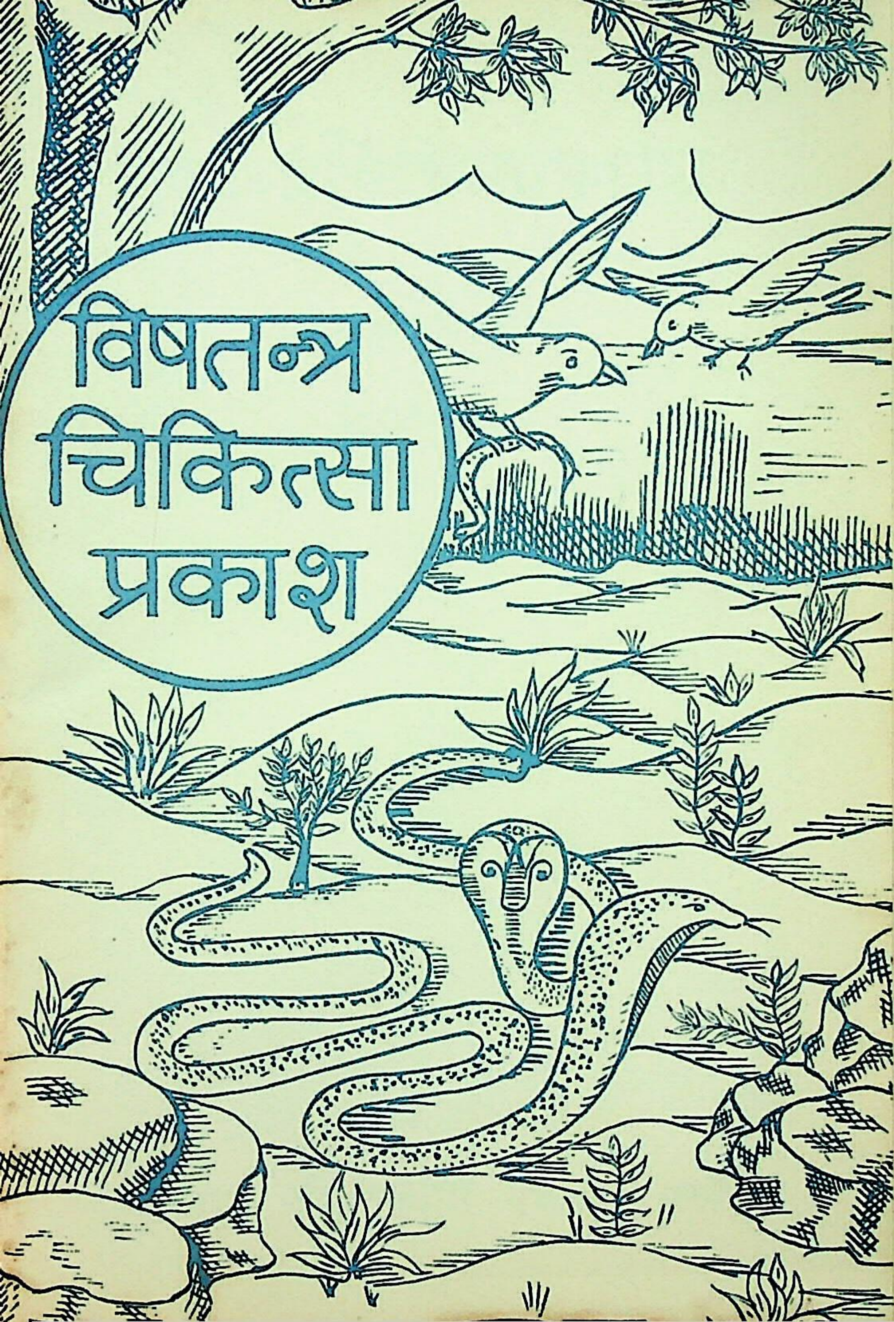


विषतन्त्र
चिकित्सा
प्रकाश

श्री:

विषतन्त्रचिकित्साप्रकाशः

रविदत्तशास्त्रिकृत–

हिन्दीटीकासमेतः

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन बम्बई

संवत् २०४६ सन १९९०

सूची मूल्य १५ रुपये मात्र

मुद्रक व प्रकाशक–
खेमराज श्रीकृष्णदास,
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
बम्बई–४०० ००४ के लिए
दे. स. शर्मा मैनेजर द्वारा
श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, खेतवाड़ी, बम्बई ४ में मुद्रित.

भूमिका

राजाके सुखके समान संसारमें कोई सुख नहीं है। उसी सुखके लोभसे एक राजा दूसरे राजासे युद्धकर अपनीही प्रधानता संसारमें चाहते हैं। जो राजा शूर वीर अधिक हो वह तो अपने बाहुबल से ही शत्रुका पराजय करता है। यदि निर्बल हो तो वह युद्धके समय शत्रुके जलाशय, अन्न आदिमें गुप्तरूपसे विष मिलादेता है। उस विषदूषित जलपीनेसे सेनामें नाना प्रकार के रोग अथवा प्राणवियोग तक हो जाते हैं। कभी कभी देखा गया है कि राज्यसुखके लोभसे रानी अथवा राज-पुत्रोंनेही राजाको भोजन, पान, अभ्यङ्ग, फूलमाला, वस्त्र आदिके योगसे विष देदिया है। इन सबसे बचनेके लिये राजाको बहुत सावधान रहना चाहिये।

इस पुस्तकमें राजाके रसोइया आदि रसोईके कर्मचारियोंके गुण और उनका विश्वासपात्र होना, रसोई में विषका प्रयोग हुआ हो तो उसकी पहिचान, नानाप्रकारके सर्प और उनके काटनेपर चिकित्सा; कुत्ते, गीदड़, मकड़ी, चूहेआदिके, विषकी चिकित्सा लिखी गई है। वैद्यकके ग्रंथोंसे मूलश्लोकोंका संग्रह किया गयाहै। पण्डित रविदत्त-जीकृत हिन्दीटीका युक्त इस ग्रंथको सर्वसाधारणके लाभार्थ हमने मुद्रित किया है। इस पुस्तकके अनुसार चिकित्सा करके मनुष्य सर्प आदिके काटनेपर लोगोंकी प्राणरक्षा तथा दुःख दूर कर सकता है।

विद्वज्जनकृपाकांक्षी

खेमराज श्रीकृष्णदास,

श्री:

विषतंत्रचिकित्साप्रकाशकी विषयानुक्रमणिका

इति विषतंत्रानुक्रमणिका समाप्त।

अथ विषतन्त्रचिकित्साप्रकाशः

हिन्दीटीकासमेतः

प्रथमतंत्रम् १

धन्वंतरिः काशिपतिस्तपोधर्म्मभृतांवरः ।।
सुश्रुतप्रभृतीञ्शिष्यांञ्छशासाहतशासनः ।।१।।

अथ विषतंत्र चिकित्साप्रकाशकी हिन्दीटीका लिखते हैं ।। काशीका राजा और तपस्वी, धर्मको धारण करनेवालोंमें श्रेष्ठ और जिसकी शिक्षा हत न हो सके ऐसे धन्वन्तरिजीने सुश्रुत आदि शिष्योंको शिक्षा दी ।।१।।

रिपवो विक्रमाक्रान्ता ये च स्वे कृत्यतां गताः ।।
सिसृक्षवः क्रोधविषं विवरं प्राप्य तादृशम् ।।२।।

अपने कृत्यको प्राप्त हुये, बलसे आक्रान्त हुये, क्रोधरूपी जहरको रचनेकी इच्छा करते हुये, वैसेही किसी छलको प्राप्त होकर ।।२।।

विषैर्निहन्युर्निपुणं नृपतिं दुष्टचेतसः ।।
यिस्त्रो वा विविधान्योगान्कदाचित्सुभगेच्छया ।।३।।

कुशल राजाको दुष्ट चित्तवाले विषों द्वारा मार देते हैं । अथवा कभी स्त्रियां सौभाग्यकी इच्छा करके अनेक योगोंको करती हैं ।।३।।

विषकर्मोपयोगाद्वा क्षणाज्जह्यादसून्नरः ।।
तस्माद्वैद्येन सततं विषाद्रक्ष्यो नराधिपः ।।४।।

अथवा विषकर्मके उपयोगसे पुरुष क्षणमात्रमें प्राणोंको त्याग देता है इसलिये निरंतर वैद्यको राजाकी रक्षा करनी चाहिये ।।४।।

यस्माच्च चेतोऽनित्यत्वमश्ववत्प्रथितं नृणाम् ॥
न विश्वस्यात्ततो राजा कदाचिदपि कस्यचित् ॥५॥

क्योंकि मनुष्योंका चित्त अश्वकी तरह अनित्य अर्थात् चंचल कहा है सो राजा कभी किसीका विश्वास न करे ॥५॥

कुलीनं धार्मिकं स्निग्धं सुभृतं सततोत्थितम् ॥
अलुब्धमशठं भक्तं कृतसंप्रियदर्शनम् ॥६॥

कुलीन, धार्मिक स्निग्ध और सुंदर पोष करनेवाला और निरन्तर अभ्युत्थान करनेवाला और निर्लोभी शठ न हो, भक्त कृतज्ञ प्रियदर्शन-वाला ॥६॥

क्रोधपारुष्यमात्सर्य्यमदालस्यविवर्जितम् ॥
जितेंद्रियं क्षमावन्तं शुचिं शीलदयान्वितम् ॥७॥

क्रोध–कठोरता मात्सर्य्य मद आलस्य इनसे वर्जित जितेन्द्रिय क्षमावाला पवित्र शील और दयासे युक्त ॥७॥

मेधाविनमसंश्रान्तमनुरक्तं हितैषिणम् ॥
बटुं प्रगल्भं निपुणं दक्षं मायाविवर्जितम् ॥८॥

बुद्धिवाला, श्रमसे रहित और प्रीति करनेवाला, हितकी इच्छा करनेवाला, चतुर, धीरजवाला, निपुण अर्थात् कुशल और क्रियामें अत्यन्त चतुर, छलसे रहित ॥८॥

पूर्वोक्तैश्च गुणैर्युक्तं नित्यं सन्निहितागदम् ॥
महानसे प्रयुञ्जीत वैद्यं तद्विद्यपूजितम् ॥९॥

इन पूर्वोक्त गुणोंसे युक्त हो और नित्यप्रति अपने पास विषको दूर करनेवाले ओषधको रखता हो और वैद्यक विद्यासे पूजित ऐसे वैद्यको पाक कर्ममें युक्त करना चाहिये ॥९॥

प्रशस्तदिग्देशकृतं शुचिभाण्डं महच्छुचि ॥
सजालकं गवाक्षाढ्यमात्मवर्गनिषेवितम् ॥१०॥

सुन्दर दिशा और जगहमें किया हुआ, श्रेष्ठ वरतनों करके युक्त, अति पवित्र, जाली झरोखोंसे युक्त और अपने आदमियोंसे सेवित ॥१०॥

विकक्षसृष्टसंसृष्टं सवितानं कृतार्चनम् ॥
परीक्षितस्त्रीपुरुषं भवेच्चापि महानसम् ॥११॥

और कक्षासे वर्जित हुये रचे जो स्थान उनसे अच्छी तरह रचा हुआ और चांदवेसे संयुक्त और पूजित और जिसमें परीक्षा किये हुये आदमी रहते हों ऐसा पाकस्थान होना चाहिये ॥११॥

तत्राध्यक्षं नियुञ्जीत प्रायो वैद्यगुणान्वितम् ॥
शुचयो दक्षिणा दक्षा विनीताः प्रियदर्शनाः ॥१२॥

वहां विशेष करके वैद्यको पाक करनेवालोंका स्वामी बनावे और पवित्र, चतुर, क्रियामें कुशल, नीतिमें युक्त, प्रियदर्शनवाले ॥१२॥

सविभक्ताः सुमनसो नीचकेशनखाः शिरः ॥
स्नाता दृढं संयमिनः कृतोष्णीषाः सुसंयुताः ॥१३॥

विभागसे संयुक्त और श्रेष्ठ मनोंवाले और बाल तथा नखोंको कटाये हुये और शिरसे स्नान किये हुये पवित्र तथा दृढ़ नियमवाले और पगड़ी बांधनेवाले और अच्छी तरह सावधान हुये ॥१३॥

तस्य चाज्ञा विधेयाः स्युर्विविधाः परिकर्म्मिणः ॥
आहारस्थितयश्चापि भवंति प्राणिनो यतः ॥१४॥

और उस वैद्यकी आज्ञामें युक्त और अनेक प्रकारके कर्मोंके करनेवाले, ऐसे पाककर्म संबंधी कर्मको करने वाले होने चाहिये और जिस कारणसे सब प्राणियोंकी आहारमें स्थिति रहती है ॥१४॥

तस्मान्महानसे वैद्यः प्रमादरहितो भवेत् ॥
महानसिकवोढारः सौपौदनिकपौपिकाः ॥१५॥

उस वास्ते पाक करनेमें वैद्य प्रमादसे रहित रहे और रसोईमें दाल, चावल, पूड़े इत्यादिक भोजनोंको बनानेवाले ॥१५॥

भवेयुर्वैद्यवशगा ये चाप्यन्ये तु केचन ।।
इङ्गितज्ञो मनुष्याणां वाक्चेष्टामुखवैकृतैः ।।१६।।

और बहुतसे अन्यजन भी वैद्यके वशमें रहें और मनुष्योंके वाणी चेष्टा मुखकी विकृति करके इन चिन्हों करके ।।१६।।

विद्याद्विषस्य दातारमेभिर्लिङ्गैश्च बुद्धिमान् ।।
न ददात्युत्तरं पृष्टो विवक्षन् मोहमेति च ।।१७।।

वैद्य विष देनेवाले पुरुषको जानें कि पूछा हुआ कुछ उत्तर नहीं देवे और कहनेकी इच्छा करता हुआ मोहको प्राप्त हो जाये ।।१७।।

अपार्थं बहुसंकीर्णं भाषते चापि मूढवत् ।।
स्फोटयत्यंगुलीर्भूमिकस्माद्विलिखेद्वमेत् ।।१८।।

और बहुतसे झूठे वचन तथा मूढ़की तरह मिले हुये वचन बोले, अंगुलियोंको कटकावे और पृथ्वीको खोदने लग जाये, छर्दि करने लग जाये ।।१८।।

वेपथुर्जायते तस्य त्रस्तश्चान्योन्यमीक्षते ।।
क्षामो विवर्णवक्त्रश्च नखैः किञ्चिच्छिनत्यपि ।।१९।।

कांपने लगे, अन्य अन्य की ओर देखने लग जाय, ग्लानिसहित और बुरा मुखवाला हो जाये और नखोंसे कछु छेदन करने लग जावे ।।१९।।

आलभेतासकृद्दीनः करेण च शिरोरुहान् ।।
निर्यियासुरपद्वारैर्वीक्षते च पुनःपुनः ।।२०।।

आलसको प्राप्त हो, दीन हुआ हाथ करके शिरके बालोंको खोसने लग जाय और निकलनेकी इच्छावाला वह गुप्तरूप दरवाजोंमें से वारम्वार देखे ।।२०।।

वर्तते विपरीतस्तु विषदाता विचेतनः ।।
केचिद्ब्रूयात्पार्थिवस्य त्वरिता वा तदाज्ञया ।।२१।।

ऐसे विषको देनेवाला विचेतन हुआ विपरीत वर्तता है और बहुतसे राजाके भयसे अथवा आज्ञासे ॥२१॥

असतामपि सन्तोपि चेष्टां कुर्वन्ति मानवाः ॥
तस्मात्परीक्षणं कार्य्यं भृत्यानामादितो नृपैः ॥२२॥

शीघ्रही दुष्ट पुरुषोंकी तरह कभी श्रेष्ठ पुरुषोंकी तरह चेष्टा करने लग जाते हैं, इसलिये राजाको भृत्यआदिकोंकी परीक्षा करनी चाहिये ॥२२॥

अन्ने पाने दंतकाष्ठे तथाभ्यङ्गे च लेखने ॥
उत्सादने कषाये च परिसेकेऽनुलेपने ॥२३॥

अन्न पान तथा अभ्यंग अवलेखन उत्सादन कषाय परिसेक अनुलेप ॥२३॥

स्रक्षु वस्त्रेषु शय्यासु कवचाभरणेषु च ॥
पादुकापादपीठेषु पृष्ठेषु गजवाजिनाम् ॥२४॥

इनके बारे में और माला, वस्त्र, शय्या आदि के बारेमें कवच आभरण अर्थात् गहने पैरोंकी खड़ाऊं आसन और हाथी घोड़े आदिकोंकी पीठ पर ॥२४॥

विषजुष्टेषु चान्येषु नस्यधूमाञ्जनादिषु ॥
लक्षणानि प्रवक्ष्यामि चिकित्सामप्यनन्तरम् ॥२५॥

विषसे युक्त अन्य नस्य धूमपान तथा अंजन आदिके द्वारा जो विष दिया जाता है उनके लक्षण मैं कहूंगा और तदनंतर चिकित्साको भी कहेंगे ॥२५॥

नृपभक्ताद्बलिं न्यस्तं सविषं भक्षयन्ति ये ॥
तत्रैव ते विनश्यंति मक्षिकावायसादयः ॥२६॥

राजाके वास्ते विषसहित बने हुए भोजनकी बलिको जो मक्षिका

तथा काक आदिक भक्षण करते हैं वे माखी आदि जीव उसी जगह नाशको प्राप्त हो जाते हैं ॥२६॥

हुतभुक्तेन चान्नेन भृशं चटचटायते॥
मयूरकंठप्रतिमो जायते चापि दुःसहः ॥२७॥

उस अन्नको जो अग्निमें गेर देवे तो बहुत देरतक चटचटा शब्द होता रहे और दुःसह ॥२७॥

भिन्नार्चिस्तीक्ष्णधूमश्च न चिराच्चोपशाम्यति ॥
चकोरस्याक्षिवैराग्यं जायते क्षिप्रमेव तु ॥२८॥

तथा मोरके कंठसमान वर्णवाला रंग हो जाता है और अग्निकी शिखा बंद हो जावे और धूवां तीक्ष्ण हो जावे और बहुत देरतक शांत न होवे और उस विषको जो चकोर भक्षण कर लेवे तो उसके नेत्रोंमें शीघ्र रोग हो जावे ॥२८॥

दुष्टान्नं विषसंसृष्टं म्रियन्ते जीवजीवकाः ॥
कोकिलः स्वरवैकृत्यं क्रौञ्चस्तु मदमृच्छति ॥२९॥

उस विषसे युक्त अन्नको जीवजीवक अर्थात् चकोरभेद पक्षी भक्षण कर लेवे तो मर जावे और कोकिलाका स्वर बिगड़ जावे और क्रौंच मदको त्याग देवे ॥२९॥

हृष्येन्मयूर उद्विग्नः क्रोशतः शुकसारिके ॥
हंसः क्ष्वेडति चात्यर्थं भृङ्गराजस्तु कूजति ॥३०॥

और मयूर उद्वेगको प्राप्त हुआ आनंदको प्राप्त होवे और तोता तथा सारिका पुकारने लग जावे और हंस ऊंचा शब्द करने लग जावे और भंवरा कूजने लग जावे ॥३०॥

पृषतो विसृजत्यश्रु विष्ठां मुञ्चति मर्कटः ॥
सन्निकृष्टां ततः कुर्याद्राजस्तान् मृगपक्षिणः ॥३१॥

और पृषत् संज्ञक मृग आंसू गेरने लग जावे और वानर विष्ठाको त्याग देवे। इस वास्ते ये सब मृगपक्षी ॥३१॥

वेश्मनोथ विभूषार्थं रक्षार्थं चात्मनः सदा ॥
उपक्षिप्तस्य चान्नस्य बाष्पेणोर्ध्वं प्रसर्प्यता ॥३२॥

राजाके समीप महलोंमें शोभाके वास्ते अथवा रक्षाके वास्ते रखने चाहिये। और बुरा अन्न खानेसे यदि ऊपरको भाप निकले ॥३२॥

हृत्पीडाभ्रान्तनेत्रत्वं शिरोदुःखञ्च जायते ॥
तत्र नस्याञ्जने कुष्ठं रामठं नलदं मधु ॥३३॥

हृदयमें पीड़ा नेत्रोंमें भ्रम और शिरमें दुःख हो जावे तो वहां नस्यमें और अञ्जनमें कूठ हींग जटामांसी अर्थात् बालछड़ शहद ॥३३॥

कुर्याच्छिरीषरजनीचन्दनैश्च प्रलेपनम् ॥
हृदि चंदनलेपस्तु तथा सुखमवाप्नुयात् ॥३४॥

इनको काम में ले और शिरस हलदी चंदनका लेप करना तथा हृदयमें चन्दनका लेप करनेसे सुख प्राप्त हो जाता है ॥३४॥

पाणिप्राप्तं पाणिदाहं नखशातं करोति च ॥
अत्र प्रलेपश्यामेंद्रगोपासोमोत्पलानि च ॥३५॥

हाथमें प्राप्त हुआ दाह और नखोंका कटना करे तो इन्द्रगोपा अर्थात् तीजसंज्ञक जीव लाल चंदन कमल ॥३५॥

सचेत्प्रमादान्मोहाद्वा तदन्नमुपसेवते ॥
अष्ठीलावत्ततो जिह्वा भवत्यरसवेदिनी ॥३६॥

इनको पीस लेप करना चाहिये और जो कोई प्रमादसे उस विषके अन्नको खा लेवे तो अष्ठीला रोगकी तरह जिह्वा रसको नहीं ग्रहण करे ॥३६॥

तुद्यते दह्यते चापि श्लेष्मा चास्मात्प्रसिच्यते ॥
तत्र बवाष्पेरितं कर्म यच्च स्याद्दांतकाष्ठिकम् ॥३७॥

और पीड़ा हो और जल जाय और कफ करके सेचन होवे तहां भांप दिवानेकी क्रिया करे और दंतकाष्ठमें कहे कर्म करे ।।३७।।

मूर्च्छां छर्दिमतीसारमाध्मानं दाहवेपथू ।।
इंद्रियाणां च वैकृत्यं कुर्यादामाशयं गतम् ।।३८।।

मूर्च्छा, छर्द्दि, अतिसार आध्मान दाह कंपना इन्द्रियोंकी विकृति इन रोगोंको आमाशयमें गत हुआ विष करता है ।।३८।।

तत्राशु मदनालाबुबिंकोशातकीफलैः ।।
छर्दनं दध्युदश्विद्भ्यामथवा तण्डुलाम्बुना ।।३९।।

वहां शीघ्रही मैनफल कडवीतूंबी बिंबीफल कडुई तोरी और दही तक्र इनके द्वारा वमन कराना अथवा चावलोंके जल से वमन कराना ।।३९।।

दाहमूर्च्छामतीसारं नृणामिन्द्रियवैकृतम् ।।
आटोपपाण्डुतां कार्श्यं कुर्य्यात्पक्वाशयं गतम् ।।४०।।

दाह, मूर्च्छा, अतिसार और मनुष्योंके इन्द्रियोंकी विकृति, अफारा, पाण्डुता, कृशपना इन रोगोंको पक्वाशयमें गतहुआ विष करता है।।४०।।

विरेचनं सर्सपिष्कं तत्रोक्तं नीलिनीफलम् ।।
दध्ना दूषी विसारिश्च पेयो वा मधुसंयुतः ।।४१।।

वहां घृत, नीलिका फल द्वारा जुलाव दिवावे और दहीके संग अथवा शहदके संग चौलाई पीनी उचित है ।।४१।।

द्रवद्रव्येषु सर्वेषु क्षीरमद्योदकादिषु ।।
भवंति विविधा राज्यः फेनबुद्बुदजन्म च ।।४२।।

सब पतले द्रव्योंमें दूध, मदिरा आदिमें विष मिल जावे तो उनमें अनेक प्रकारोंकी पंक्ति हो जावे और झाग तथा बुदबुदे उत्पन्न हो जावें ।।४२।।

छायाश्चात्र न दृश्यन्ते दृश्यन्ते यदि वा पुनः ।।
भवन्ति यमलाश्छिद्रा लम्ब्यो वा विकृतास्तथा ।।४३।।

उसमें किसी वस्तुकी छाया नहीं दीखे और जो दीखे तो दो दो छिद्रसे दीखैं और विकराल छाया दीखे ॥४३॥

शाकसूपान्नमांसानि क्लिन्नानि विरसानि च ॥
सद्यः पर्युषितानीव विगन्धानि भवन्ति च ॥४४॥

शाक दाल अन्न मांस ये सब गीले हो जावें और विरस हो जावें और तत्काल बासीकी तरह हो जावें और गंधसे रहित होजावें ॥४४॥

गन्धवर्णरसैर्हीनाः सर्वे भक्ष्याः फलानि च ॥
पक्वान्याशु विशीर्यन्ते पाकमामानि यन्ति च ॥४५॥

गंध वर्ण रस इनसे हीन सब भक्ष्य पदार्थ और फल हो जावें और पके हुये फल विष मिलनेसे शीघ्रही बिखर जाते हैं और कच्चे फल पक जाते हैं ॥४५॥

विशीर्यते कूर्चकस्तु दंतकाष्ठगते विषे ॥
जिह्वादंतौष्ठमांसानां श्वयथुश्चोपजायते ॥४६॥

दंतूनमें जो विष लगा रक्खा हो तो वह दांतून खिड जाती है और उस मनुष्यकी जिह्वा ओष्ठ मसूढ़े सूज जाते हैं ॥४६॥

अथास्य धातकीपुष्पपथ्याजम्बुफलास्थिभिः ॥
सक्षौद्रैः प्रच्छिते शोफे कर्तव्यं प्रतिसारणम् ॥४७॥

इसके वास्ते धायके फूल हरडै जामनकी गुठली इनके द्वारा शहदके संग उस सोजेपर मालिस करनी चाहिये ॥४७॥

अथवांगोठमूलानि त्वचः सप्तच्छदस्य वा ॥
शिरीषमाषका वापि सक्षौद्रं प्रतिसारणम् ॥४८॥

अथवा अंकोटकी जड़ सातलाकी छाल अथवा शिरस उड़द शहद इनके द्वारा प्रतिसारण अर्थात् मालिस करानी चाहिये ॥४८॥

जिह्वानिर्लेखबलौ दंतकाष्ठवदादिशेत् ॥
पिच्छिलो बहुलोऽभ्यंगो विवर्णो वा विषान्वितः ॥४९॥

और जिह्वा निर्लेखक वल धारण ये दंतकाष्ठकी तरह करवाने चाहिये और विषसे युक्त अभ्यंग अर्थात् मालिस का द्रव्य बहुत झागों-वाला होजाता है ।।४९।।

स्फोटजन्मरुजास्रावत्वक्पाकस्वेदनं ज्वरः ।।
दरणं चापि मांसानामभ्यङ्गे विषसंयुते ।।५०।।

और उससे हडफूटन पीड़ा स्राव त्वक्पाक स्वेद ज्वर मांसोंका कटना ये सब हो जाते हैं ।।५०।।

तत्र शीताम्बुसिक्तस्य कर्तव्यमनुलेपनम् ।।
चंदनं तगरं कुष्ठमुशीरं वेणुपत्रिका ।।५१।।

वहां शीतल जलकी रेतीका अनुलेप करना उचित है और चंदन सूंठ कूट खश वंशलोचन ।।५१।।

सोमवल्लयमृता श्वेता पद्मं कालीयकं त्वचम् ।।
कपित्थरसमूत्राभ्यां पानमेत्तच्च युज्यते ।।५२।।

चांदवेल गिलोय कमल काला अगर दालचीनी इनको कैथके रस और गोमूत्रमें पीस योजन करना चाहिये ।।५२।।

उत्सादने परिसेके कषाये चानुलेपने ।।
शय्यावस्त्रतनुत्रेषु ज्ञेयमभ्यङ्गलक्षणैः ।।५३।।

उत्सादन परिसेक कषाय अनुलेपन शय्या वस्त्र इत्यादिके द्वारा भी अभ्यंगके लक्षणों से विष जान लेना ।।५३।।

केशशातः शिरोदुःखं खेभ्यश्च रुधिरागमः ।।
ग्रंथिजन्मोत्तमाङ्गेषु विषजुष्टेऽनुलेपने ।।५४।।

और केश गिर जावें शिरमें दुःख होवै शरीर के छिद्रोंके द्वारा रुधिर निकले और विषसे युक्त अनुलेप लगानेसे मस्तकमें गांठ उत्पन्न हो जाती हैं ।।५४।।

प्रलेपो बहुशस्तत्र भाविताः कृष्णमृत्तिकाः ॥
ऋष्यपित्तघृता श्यामापालिन्दी तण्डुलीयकैः ॥५५॥

वहां विशेष करके काली मृत्तिकाका लेप करना उचित है मृगका पित्ता घृत लघुनीली निशोत चौलाई इनको ॥५५॥

गोमयस्वरसो वापि हितो वा मालतीरसः ॥
रसो मूषिकपर्ण्या वा धूमो वागारसम्भवः ॥५६॥

गौके गोबरके रसमें अथवा मालतीके रसमें मिलाय लेप करनेसे अथवा मूसापर्णीके रसका और घरका धूमाका लेप करना चाहिये और विषयुक्त अभ्यंग ॥५६॥

शिरोऽभ्यङ्गः शिरस्त्राणां स्नानमुष्णीषमेव च ॥
स्रजश्च विषसंसृष्टाः साधयेदनुलेपवत् ॥५७॥

शिरपर और स्नान तथा पगड़ीपर विष लगाया जाय और विषमें मिली हुई माला पहनी जावे तो इन सबकी साधना अनुलेपकी तरह करनी चाहिये ॥५७॥

मुखलेपे मुखं श्यावं युक्तमभ्यङ्गलक्षणैः ॥
पद्मिनीकंटकप्रख्यैः कंटकैश्चोपचीयते ॥५८॥

मुखलेपमें विष मिला हो तो मुखका कपिशवर्ण हो जाता है और अभ्यंगके लक्षण वहां मिलते हैं और वहां पद्मिनीके कांटे सरीखे कांटों द्वारा वृद्धिको प्राप्त होवे ॥५८॥

तत्र क्षौद्रघृतं पानं प्रलेपश्चंदनं घृतम् ॥
पयस्यामधुकं फञ्जी बंधुजीवः पुनर्नवा ॥५९॥

फिर शहद और घृतका पान करना चाहिये और चंदन तथा घृतका लेप करना चाहिये और दूधी मुलहटी फंजी जीवापोता पुनर्नवा अर्थात् शांठी इनका लेप करना चाहिये ॥५९॥

अस्वास्थ्यं कुञ्जरादीनां लालास्रावोक्षिरक्तता ॥
स्फिक्पायुमेढ्रमुष्केषु युक्तेषु स्फोटसम्भवः ॥६०॥

विषको यदि हस्तीआदिके लेप कर दे तो अस्वस्थता अर्थात् चंचलपना और राल गिरे और रक्तनेत्र हो जावें और कूला गुदा लिंग अंडकोष इनमें विषका संयोग होवे तो फुनसियोंकी उत्पत्ति होती है ॥६०॥

तत्राभ्यङ्गवदेवेष्टा यातृवाहनयोः क्रिया ॥
शोणितागमनं खेभ्यः शिरोरुक्कफसंस्रवः ॥६१॥

वाहन अर्थात् हाथी घोड़े आदिकोंके विषकी क्रिया अभ्यंग विषकी तरह करे और पसीनोंके द्वारा रुधिर निकले, शिरमें पीड़ा हो और कफ झिरे, ये लक्षण हैं ॥६१॥

नस्यधूमगते लिङ्गमिन्द्रियाणां तु वैकृतम् ॥
तत्र दुग्धैर्गवादीनां सर्पिःसातिविषैः शृतम् ॥६२॥

पाने नस्ये च सश्वेतं हितं समदयंतिकम् ॥
गन्धहानिर्विवर्णत्वं पुष्पाणां म्लानता भवेत् ॥६३॥

नस्य तथा धूमगतविषसे इंद्रियोंकी विकृति होजाती है, गौ आदिकोंके दूध घृत अतिविष श्वेत अपराजिता बेल मोगरी इनको पका पीनेमें तथा नस्यमें देना हित है और पुष्पोंमें विष मिलनेसे गंधहानि और मलीनता हो जाती है ॥६२॥६३॥

जिघ्रतश्च शिरोदुःखं वारिपूर्णे च लोचने ॥
तत्र बाष्पेरितं कर्म मुखालेपे च यत्स्मृतम् ॥६४॥

उनको सूंघनेसे शिरमें दुःख हो जावे और नेत्र जलसे पूरित हो जावें वहां बाष्पकर्ममें कहा हुआ और मुखलेपमें कहा हुआ इलाज करवावै।६४।

कर्णतैलगते श्रोत्रवैगुण्यं शोफवेदने ॥
कर्णस्रावश्च तत्राशु कर्तव्यं प्रतिपूरणम् ॥६५॥

कानमें तेलके संग विष चला जाय तो कानमें विगुणता शोजा और पीड़ा हो जावे वहां शीघ्रही कर्णस्त्रावमें कहा हुआ प्रतिपूरण करे ।।६५।।

स्वरसो बहुपुत्रायाः सघृतक्षौद्रसंयुतः ।।
सोमवल्करसच्चापि सुशीतो हित इष्यते ।।६६।।

महाशतावरीके स्वरसमें घृत और शहद मिलाय विषको पूरण करे अथवा शीतल किया सफेद खैरका रस हित है ।।६६।।

अश्रूपदोहो दाहश्च वेदना दृष्टिविभ्रमः ।।
अञ्जने विषसंसृष्टे भवेदान्ध्यमथापि वा ।।६७।।

आंसू उपलेप दाह पीड़ा दृष्टिविभ्रम ये सब विष मिले हुए अंजनसे होजाते हैं अंधा भी होजाता है ।।६७।।

तत्र सद्योघृतं पेयं तर्पणं च समागधम् ।।
अञ्जनं मेषशृङ्गस्य निर्यासो वरुणस्य च ।।६८।।

वहां तत्काल घृत पीना चाहिये और पीपलासहित तर्पण औषधोंका सेवन उचित है और मेंढ़ाके सींगका अंजन अथवा वरणाका गूंद ।।६८।।

मुष्ककस्याजकर्णस्य फेणो गोपित्तसंयुतः ।।
कपित्थमेष शृङ्गयोश्च पुष्पं भल्लातकस्य वा ।।६९।।
एकैकं कारयेत्पुष्पं बंधूकाङ्कोठयोरपि ।।
शोफः स्रावस्तथा स्वापः पादयोः स्फोटजन्म च ।।
भवन्ति विषजुष्टाभ्यां पादुकाभ्यामसंशयम् ।।७०।।

घंटा पाटलीवृक्ष और रालका निर्यास समुद्रफेन गोपित्त और कैथ मेंढासिंगी भिलावा इनमेंसे एक कोई लेकर और आसना तथा अंकोटका पुष्प इनको आंखोंमेंका विष दूर होनेके वास्ते आंजना चाहिये और विषसे संयुक्त जूती जोड़ा तथा खड़ाऊंके पहननेसे शोजा स्राव पैरका शोजा और पैरोंमें फूटनी हो जाते हैं ।।६९।।७०।।

उपानत्पादपीठानि पादुकावत्प्रसाधयेत् ॥
भूषणानि हतार्चींषि न विभान्ति यथा पुरा ॥७१॥

सो जूतियोंमें लगा हुआ विष और पादपीठमें लगा हुआ विष इनको खड़ाऊंके विषकी तरह साधित करे और गहनोंमें यदि विष लग जावे तो कांतिसे रहित होकर पहलेकी तरह प्रकाशमान नहीं रहे ॥७१॥

स्वानि स्थानानि हन्युश्च दाहपाकावदारणैः ॥
पादुकाभूषणे युक्तमभ्यङ्गविधिमाचरेत् ॥७२॥

और दाह पाक अवदारण से अपने स्थानोंको हनन करे सो वहां पादुका अर्थात् खड़ाऊं और आभूषणोंमें विष युक्त होवे तो मालिसकी क्रिया करनी चाहिये ॥७२॥

विषोपसर्गो बाष्पादिर्भूषणांतो य ईरितः ॥
समीक्ष्योपद्रवांस्तस्य विदधीत चिकित्सितम् ॥७३॥

और वाष्प आदिक भूषणांत जो यह विषोपसर्ग कहा है उसके उपद्रवोंको विचारकर फिर चिकित्सा करनी चाहिये ॥७३॥

महासुगंधिमगदं य प्रवक्ष्यामि तं भिषक् ॥
पानलेपननस्येषु विदधीताञ्जनेषु च ॥७४॥

सो महासुगंधवाली जिस औषधको हम कहेंगे उसको वैद्य पान लेपन नस्य अञ्जन में युक्त करे ॥७४॥

विरेचनानि तीक्ष्णानि कुर्य्यात्प्रच्छर्द्दनानिच ॥७५॥
शिराश्च व्यधयेत्क्षिप्रं प्राप्तं विस्रावणं यदि ॥
मूषिकाजरुहा वापि हस्ते बद्ध्वा तु भूपतेः ॥७६॥

और तीक्ष्ण जुलाब तथा वमन करवावे और शीघ्रही सिरा वेध करवावे और यदि विस्राव न प्राप्त हो तो राजाके हाथपर अजरूहा-मूषिकाको बांध दे ॥७५॥७६॥

करोति निर्विषं सर्वमन्नं विषसमायुतम् ।।
हृदयावरणं नित्यं कुर्य्याच्च मित्रमध्यगः ।।७७।।

यह सव विषयुक्त अन्नको निर्विष कर देती है और मित्रोंके मध्यमें प्राप्त होकर नित्यप्रति हृदयका आवरण करे ।।७७।।

पिबेद्घृतमजेयाख्यममृताख्यञ्च बुद्धिमान् ।।
सर्पिर्दधि पयः क्षौद्रं पिबेद्वा शीतलं जलम् ।।७८।।

बुद्धिमान् पुरुष अजेयाख्य और अमृताख्य घृतको पीवे और घृत दही दूध शहद इनको पीवे अथवा शीतल जल पीवे ।।७८।।

मयूरान्नकुलान् गोधाः पृषतान्हरिणानपि ।।
सततं भक्षयेच्चापि रसांस्तेषां पिबेदपि ।।७९।।

और मयूर नकुल गोह पृषत्संज्ञक हिरण का निरंतर भक्षण करे और इन्हीके मांसोंके रसका पान करे ।।७९।।

गोधानकुलमांसेषु हरिणस्य च बुद्धिमान् ।।
दद्यात्सुपिष्टां पालिंदीं मधुकं शर्करां तथा ।।८०।।

और बुद्धिमान् पुरुषको गोह, नकुल, हिरणके मांसमें पीसा हुआ निशोत और मुलहटी तथा खांड मिला फिर खाना चाहिये ।।८०।।

शर्करातिविषे देये मायूरे समहौषधे ।।
पार्षते चापि देयाः स्युः पिप्पल्यः समहौषधाः ।।८१।।

और खांड अतीश सूंठ को मयूरके मांसमें मिलाकर खाना चाहिये और पीपल सूंठ इनको पृषत् संज्ञक हरिणके मांसके संग खाना चाहिये ।।८१।।

सक्षौद्रः सघृतश्चैव शिम्बीयूषो हितः सदा ।।
विषघ्नानि च सेवेत भक्ष्यभोज्यानि बुद्धिमान् ।।८२।।

और शहद घृतके संग शिंबीधान्यका यूष पीना हित है और बुद्धिमान् पुरुष विषनाशकभक्ष्य भोज्यरूप वस्तुओंका सेवन करे ।।८२।।

पिप्पलीमधुकक्षौद्रशर्करेक्षुरसाम्बुभिः ॥
छर्द्दयेद्गुप्तहृदयो भक्षितं यदि वा विषम् ॥८३॥

और यदि हृदयमें गुप्तप्रकार भक्षण किया हुआ अन्न प्राप्त हो जावे तो पीपल मुलहटी शहद खांड ईखका रस जल इनके द्वारा वमन कराना चाहिये ॥८३॥

इति विषतंत्रचिकित्साप्रकाशे हिंदीटीकायां प्रथमं तंत्रम् ॥१॥

द्वितीयतंत्रम् ॥२॥

अथ स्थावरविषविज्ञानीयतंत्रम्

स्थावरं जङ्गमञ्चैव द्विविधं विषमुच्यते ॥
दशाधिष्ठानमाद्यं तु द्वितीयं षोडशाश्रयम् ॥१॥

इसके अनंतर स्थाव रविषविज्ञानीयतंत्रको कहेंगे । स्थावर और जंगम दो प्रकारका विष होता है । स्थावर विष दश प्रकारका होता है और जंगम सोलह प्रकारका होता है ॥१॥

मूलं पत्रं फलं पुष्पं त्वक्क्षीरं सार एव च ॥
निर्यासो धातवश्चैव कन्दश्च दशमः स्मृतः ॥२॥

मूल, पत्र, फल, पुष्प, छाल, दूध, निर्य्यास, सार, धातु, कन्द ऐसे दशप्रकारका कहा है ॥२॥

तत्र क्लीतकाश्वमारगुञ्जासुबन्धगर्गरककरघाट-
विद्युच्छिखाविजयानीत्यष्टौ मूलविषाणि ॥३॥

लघुनीली, कनेर, चिरमठी, सुबंध, गर्गरक, करघाट, कलहारी, भांग इसकी जड़में विष होता है, सो ये आठ मूल विष कहाते हैं ॥३॥

बिसपत्रिकालंबावरदारुककरम्भमहाकरम्भाणि पञ्च पत्रविषाणि।४।

विसपत्रिका, कडुई तूंबी, सांगवृक्ष, लघुश्वेत, किन्ही महाकरंभ ये पांच पत्रविष हैं अर्थात् इनके पत्तोंमें विष है ।।४।।

कुमुद्वती रेणुकाकरम्भमहाकरम्भकर्कोटकरेणुकखद्योतकचर्मरीभगंधा सर्पघातिनन्दनसारपाकाणीतिद्वादश फलविषाणि ।।५।।

कुमुद्वती रेणुका लघुश्वेत किन्ही महाकरंभ कर्कोटक रेणु बीजक खद्योतक चर्मरी इभगंधा सर्पघाति गडुंभा सार पाक ये बारह १२ फल विष हैं ।।५।।

वेत्रकादम्बवल्लिजकरम्भमहाकरम्भाणि पञ्च पुष्पविषाणि ।।६।।

बेंत कादंब बल्लिज लघुश्वेत महाकरंभ ये पांच पुष्पविष हैं अर्थात् इनके पुष्पोंमें विष होता है ।।६।।

अन्त्रपाचककर्तरीयसौरीयककरघाटकरम्भनन्दन-
वराटकानि सप्त त्वक्सारनिर्य्यासविषाणि ।।७।।

अंत्रपाचक, कर्तरीय सौरीयक, करघाटक, करंभ, गडूंभा, वराटक, ये सात त्वक्सार निर्यास विष होते हैं ।।७।।

कुमुदघ्नीस्नुहीजालक्षीर्य्याणि त्रीणि क्षीरविषाणि ।।८।।

कुमुदघ्नी थोहर जालक्षीरी अर्थात् थोहरभेद ये तीन ३ क्षीर अर्थात् दूधविषसे संयुक्त होते हैं ।।८।।

फेणाश्मभस्म हरितालं च द्वे धातुविषे ।।९।।

फेणाश्मभस्म, हरताल ये दो धातुविष कहाते हैं ।।९।।

कालकूटवत्सनाभसर्षपकपालककर्दमकवैराटक-
मुस्तकशृङ्गीविषप्रपौण्डरीकमूलकहालाहलमहा-
विषकार्कोटकानीति त्रयोदश कन्दविषाणि ।।१०।।

कालकूट, वत्सनाभ, सर्षप, कपालक, कर्दमक, वैराटक, मुस्तक, शृंगीविष, प्रपौंडरीक, मूलक, हालाहल, महाविष, कार्कोटक ये तेरह १३ कंदविष कहाते हैं ।।१०।।

इत्येवं पञ्चपञ्चाशत्स्थावरविषाणि भवन्ति ॥११॥

ऐसे ये ५५ पचपन स्थावरविष कहाते हैं ॥११॥

चत्वारि वत्सनाभानि मुस्तके द्वे प्रकीर्तिते ॥
षट् चैव सर्षपाण्याहुः शेषाण्येकैकमेव तु ॥१२॥

वत्सनाभ चार प्रकारका होता है और दो प्रकारका मुस्तक होता है छः प्रकारका सर्षप विष होता है और बाकी एक एक प्रकारके होते हैं ॥१२॥

उद्वेष्टनं मूलविषैः प्रलापो मोह एव च ॥
जृम्भाङ्गोद्वेष्टनश्वासा ज्ञेयाः पत्रविषेण तु ॥१३॥

मूलविषों से उद्वेष्टन होता है और प्रलाप तथा मोह जृंभा अंगोद्वेष्टन श्वास ये लक्षण पत्रविषके होते हैं ॥१३॥

मुष्कशोफः फलविषैर्दाहोऽन्नद्वेष एव च ॥
भवेत्पुष्पाविषैश्छर्दिराध्मानं मोह एव च ॥१४॥

अंडकोश पर सूजन, दाह, अन्नद्वेष ये लक्षण फलविष के होते हैं और पुष्पविषके छर्दि आध्मान मोह ये होते हैं ॥१४॥

त्वक्सारनिर्यासविषैरुपयुक्तैर्भवन्ति हि ॥
आस्यदौर्गन्ध्यपारुष्यशिरोरुक्कफसंस्रवाः ॥१५॥

त्वक्सार, निर्यास इन विषोंके देनेसे मुखदौर्गंध्य कठोरता शिरमें पीड़ा कफ गिरना ये लक्षण हो जाते हैं ॥१५॥

फेणागमः क्षीरविषे विड्भेदो जिह्मजिह्वता ॥
हृत्पीडनं धातुविषैर्मूर्च्छादाहश्च तालुनि ॥१६॥

क्षीर अर्थात् दूधके विषसे झागोंका आगमन, विष्ठाका भेद और कठिनजिह्वा ये लक्षण हो जाते हैं। धातुविषसे हृदयमें पीड़ा होती है और मूर्च्छा तथा तालुवामें दाह होता है ॥१६॥

प्रायेण कालघातीनि विषाण्येतानि निर्दिशेत् ॥
कन्दजानि तु तीक्ष्णानि तेषां वक्ष्यामि विस्तरम् ॥१७॥

विशेष करके ये कालघाती विष कहाते हैं और कंदसे उत्पन्न हुये विष तीक्ष्ण कहाते हैं उनको मैं विस्तारसे कहूंगा ॥१७॥

स्पर्शाज्ञानं कालकूटे वेपथुस्तंभ एव च ॥
ग्रीवास्तम्भो वत्सनाभे पीतविण्मूत्रनेत्रता ॥१८॥

कालकूटविषसे स्पर्शका अज्ञान और कंपना तथा स्तंभ हो जाता है और वत्सनाभविषसे ग्रीवास्तंभ और विष्ठा, मूत्र, नेत्र ये पीले हो जाते हैं ॥१८॥

सर्षपे तालुवैगुण्यमानाहो ग्रन्थिजन्म च ॥
ग्रीवादौर्बल्यवाक्सङ्गौ पालकेनुमताविह ॥१९॥

सर्षपविषसे तालुवैगुण्य आनाह ग्रंथिजन्म ग्रीवादौर्बल्य वाणी बंद हो जाना ये पालकविषके लक्षण हैं ॥१९॥

प्रसेकः कर्दमाख्ये तु विड्भेदो नेत्रपीतता ॥
वैराटकेष्वाङ्गदुःखं शिरोरोगश्च जायते ॥२०॥

कर्दमविषसे प्रसेक अर्थात् धुकधुकी, विष्ठाका भेद, नेत्र पीले ये लक्षण हो जाते हैं। वैराटकविषसे अंगमें दुःख, शिरमें पीड़ा हो जाती है ॥२०॥

गात्रस्तम्भो वेपथुश्च जायते मुस्तकेन तु ॥
शृङ्गीविषेणाङ्गसाददाहोदरविवृद्धयः ॥२१॥

गात्रस्तंभ, कंपना ये मुस्तक विषसे हो जाते हैं शृंगी विषसे अंग टूटना दाह उदरकी वृद्धि हो जाती है ॥२१॥

पुण्डरीकेण रक्तत्वमक्ष्णोर्वृद्धिस्तथोदरे ॥
वैवर्ण्यं मूलकैश्छर्दिर्हिक्काशोकप्रमूढता: ॥२२॥

पुंडरीक विषसे रक्तनेत्र और उदरकी वृद्धि हो जाती है और मूलकविषसे विवर्णता हिचकी सूजन, मूढता ये हो जाते हैं ॥२२॥

चिरेणोच्छ्वसिति श्यावो नरो हालाहलेन वै ॥
महाविषेण हृदये ग्रन्थिशूलोद्गमौ भृशम् ॥२३॥

हालाहलविषसे देर २ में ऊंचा श्वास लेवे और महाविषसे हृदयमें ग्रंथि और शूल वारंवार उपजे ॥२३॥

कर्कटेनोत्पतत्यूर्ध्वं हसन्दन्तान्दशत्यपि ॥
कंदजान्युग्रवीर्याणि प्रयुक्तानि त्रयोदश ॥२४॥

कर्कटविषसे ऊपरको उछले और हंसता हुआ दांतोंको खिलावे और कंदसे उत्पन्न हुये तेरह १३ विष उग्र वीर्यवाले कहे हैं ॥२४॥

सर्वाणि कुशलैर्ज्ञेयान्येतानि दशभिर्गुणैः ॥
रूक्षमुष्णं तथा तीक्ष्णं सूक्ष्मताशुव्यवायि च ॥
विकाशिविशदञ्चैव लघ्वपाकि च तत्स्मृतम् ॥२५॥

चतुर वैद्योंको दश गुणों द्वारा ये सब विष जान लेने चाहिये कि रूक्ष, उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, आशुव्यायि, विकाशि, विशद, लघ्वपाकि ये वे लक्षण हैं ॥२५॥

तद्राक्ष्यात्कोपयेद्वायुमौष्ण्यात्पित्तं सशोणितम् ॥२६॥

सो वह विष रसायनसे तो वायुको कोप करे और उष्णतासे रुधिर-सहित पित्तको कोप करता है ॥२६॥

मानसं मोहयेत्तैक्ष्ण्यादंगबंधाञ्छिनत्त्यपि ॥
शरीरावयवान्सौक्ष्म्यात्प्रविशेद्विकरोति च ॥२७॥

तीक्ष्णपनासे मनुष्यके मोहको प्राप्त करता है और अंगोंके बंधोंको छेदन करता है और सूक्ष्मपनासे शरीरके भागोंमें प्रवेश हो विकार करता है ॥२७॥

आशुत्वादाशु तद्धन्ति व्यवायात्प्रकृतिं भजेत् ॥
क्षपयेच्च विकाशित्वाद्दोषान्धातून्मलानपि ॥२८॥

आशु अर्थात् शीघ्रपनेसे शीघ्रही मार देता है और व्यवायसे अपनी प्रकृतिको प्राप्त हो जाता है और विकाशि होनेसे दोषधातु मलको फेंक देता है ॥२८॥

वैशद्यादतिरिच्येत दुश्चिकित्स्यं च लाघवात् ।।
दुर्जरं चाविपाकित्वात्तस्मात्क्लेशयते चिरम् ।।२९।।

विशदपनासे जुलाव लग जाता है और लाघवता होनेसे दुश्चिकित्स्य अर्थात् कष्टसाध्य हो जाता है और विपाकी होनेसे दुर्जर हो जाता है इस कारण देरतक क्लेश करता है ।।२९।।

स्थावरं जंगमं यच्च कृत्रिमं चापि तद्विषम् ।।
सद्यो व्यापादयेत्तत्तु ज्ञेयं दशगुणान्वितम् ।।३०।।

जो स्थावर जंगम अथवा कृत्रिम विष हैं वह दशगुणों द्वारा मुक्त तत्काल जान लेना चाहिये ।।३०।।

यत्स्थावरं जङ्गमकृत्रिमं वा देहादशेषं यदनिर्गतं तत् ।।
जीर्णं विषघ्नौषधिभिर्हतं वा दावाग्निवातातपशोषितं वा ।।३१।।

जो स्थावर जंगम कृत्रिम विष अथवा देहसे निकला हुआ विष हो तथा जीर्ण और विषघ्न औषधोंसे हत हो अथवा दावाग्निसे तथा धूपसे शोषित हो ।।३१।।

स्वभावतो वा गुणवीर्यहीनं विषं हि दूषीविषतामुपैति ।।
वीर्य्याल्पभावान्न निपातयेत्तत्कफावृतं वर्षगुणानुबन्धि ।।३२।।

अथवा स्वभावसे गुणोंसे हीन हो ऐसा विष दूषीविषको प्राप्त हो जाता है सो उस विषको वीर्यके अल्पभाव होनेसे गिराते नहीं क्योंकि वह कफसे आवृत हो जाता है और कई वर्षोंके अनुबंधवाला हो जाता है ।।३२।।

तेनार्द्दितो भिन्नपुरीषवर्णो विगन्धवैरस्यमुखः पिपासी ।।
मूर्च्छन्वमन्गद्गदवाग्विपन्नो भवेच्च दुष्टोदरलिंगजुष्टः ।।३३।।

सो उस विषसे पीड़ित पुरुष विष्ठा और वर्णसे भिन्न हो जाता है और गंध तथा रससे रहित मुखवाला और तृषासे युक्त रहता है और मूर्च्छाको प्राप्त होता हुआ तथा वमन करता हुआ तथा गद्गद-वाणीको प्राप्त हुआ दुष्टोदर रोगके चिह्नोंसे युक्त हो जाता है ।।३३।।

आमाशयस्थे कफवातरोगी पक्वाशयस्थेऽनिलपित्तरोगी ॥
भवेन्नरो ध्वस्तशिरोरुहाङ्गो विलूनपक्षस्तु यथा विहङ्गः ॥३४॥

आमाशयमें विष प्राप्त होनेसे कफ वातरोग हो जाता है और पक्वाशयमें विष प्राप्त होनेसे वातपित्त रोगी हो जाता है और उस मनुष्यके वाल उड़ जाते हैं जैसे पक्षीके पर कट जावें वैसे होजाता है ॥३४॥

स्थितं रसादिस्त्वथवा यथोक्तान्करोति धातुप्रभवान्विकारान् ॥
कोपञ्च शीतानिलदुर्दिनेषु यात्याशु पूर्वं शृणु तत्र रूपम् ॥३५॥

रसादिकोंमें स्थित हुआ विष धातुसे उत्पन्न हुए यथोक्त विकारोंको करता है और मेघसे ढके हुए वा शीतवातके दिनोंमें कोपको प्राप्त करता है सो उसका पूर्व रूप सुनो ॥३५॥

निद्रां गुरुत्वञ्च विजृम्भणञ्च विश्लेषहर्षावथवाङ्गमर्दः ॥
ततः करोत्यन्नमदाविपाकावरोचकं मण्डलकोठमोहान् ॥३६॥

निद्रा आवे, भारीपन रहे, जंभाई आवे, विश्लेष, हर्ष, अंगका टूटना ये होजाते हैं पश्चात् अन्नका मद, विपाक, अरुचि, मंडल, कोठ, मोह, को करता है ॥३६॥

धातुक्षयं पादकरास्यशोफं वृकोदरं छर्द्दिमथातिसारम् ॥
वैवर्ण्यमूर्च्छाविषमज्वरान्वा कुर्य्यात्प्रवृद्धां प्रबलां तृषां वा ॥३७॥

धातुक्षय करता है तथा पैर हाथ मुख इन पर सूजन करता है और जलोदर, छर्द्दि, अतिसार, विवर्ण, मूर्छा, विषमज्वरको करता है और बढ़ी हुई तथा प्रवल तृषाको करता है ॥३७॥

उन्मादमन्यज्जनयेत्तथान्यदानाहमन्यत्क्षपयेच्च शुक्रम् ॥
गाद्गद्यमन्यज्जनयेच्च कुष्ठं तांस्तान् विकारांश्च बहुप्रकारान् ॥३८॥

उन्माद तथा अफ़ाराको कर देता है और वीर्य्यका क्षेपण करता है, कोई एक विष गद्गदवाणी कर देता है और कुष्ठको पैदा कर देता है और बहुत प्रकारके विकारोंको पैदा कर देता है ॥३८॥

दूषितं देशकालान्नदिवास्वप्नैरभीक्ष्णशः ॥
यस्माद्दूषयते धातूंस्तस्माद्दूषीविषं स्मृतम् ॥३९॥

देश काल अन्न दिनमें सोना इनको वारंवार करनेसे दूषित हो जाता है और धातुओंको दूषित कर देता है इस कारण दूषीविष कहाता है॥३९॥

स्थावरस्योपयुक्तस्य वेगे तु प्रथमे नृणाम् ॥
श्यामा जिह्वा भवेत्स्तब्धा मूर्च्छा श्वासश्च जायते ॥४०॥

स्थावर उपयुक्तविषके प्रथम वेगमें मनुष्योंकी जिह्वा कपिश रंग-वाली हो जाती है और स्तब्धता मूर्च्छा श्वास ये हो जाते हैं ॥४०॥

द्वितीये वेपथुः स्वेदो दाहः कण्डूरुजस्तथा ॥
विषमामाशयप्राप्तं कुरुते हृदि वेदनाम् ॥४१॥

दूसरे वेगमें कंपना और स्वेद दाह कंडुरोग ये होते हैं और आमाशयमें प्राप्त हुआ विष हृदयमें पीड़ा करता है ॥४१॥

तालुशोषं तृतीये तु शूलं चामाशये भृशम् ॥
दुर्वर्णे हरिते शूने एजे चास्य लोचने ॥४२॥

तीसरे वेगमें तालुशोष होता है और आमाशयमें प्राप्त हुआ शूलको करता है दुष्टवर्णवाले तथा हरितवर्णवाले और शोजेसे संयुक्त और बढ़े हुये व सकम्प नेत्र हो जाते हैं ॥४२॥

पक्वाशयगते तोदो हिक्का कासोऽन्त्रकूजनम् ।
चतुर्थे जायते वेगे शिरसश्चातिगौरवम् ॥४३॥

पक्वाशयमें विष प्राप्त हो जावे तो तोद अर्थात् चमका हिचकी खांसी आंतका बोलना ये हो जाते हैं और चौथे वेगमें शिर अति भारी हो जाता है ॥४३॥

कफप्रसेको वैवर्ण्यं पर्व्वभेदश्च पञ्चमे ॥
सर्वदोषप्रकोपश्च पक्वाधाने च वेदना ॥४४॥

कफका निकलना, विवर्णता, पर्व अर्थात् संधियोंका टूटना ये पांचवें वेगमें हो जाते हैं और सब दोषोंका प्रकोप इनका भंग होता है और पक्वाशयमें पीड़ा होती है ॥४४॥

षष्ठे प्रज्ञाप्रणाशश्च भृशं वाप्यतिसार्य्यते ॥
स्कन्धपृष्ठकटीभङ्गः सन्निरोधश्च सप्तमे ॥४५॥

छठे वेगमें बुद्धिका नाश और वारंवार अतिसार हो जाता है और कांधा पीठ कटी और सन्निरोध ये सातवें वेगके उपद्रव हैं ॥४५॥

प्रथमे विषवेगे तु वान्तं शीताम्बुसेवितम् ॥
अगदं मधुसर्पिभ्यां पाययेत्तु समायुतम् ॥
द्वितीये पूर्ववद्वांतं पाययेत्तु विरेचनम् ॥४६॥

सो वहां विषके प्रथमवेगमें तो वमन कराना तथा शीतल जलका सेवन कराना उचित है और दूसरे वेगमें पूर्ववत् वमन कराना जुलाब लगनेकी औषधोंका पान कराना उचित है ॥४६॥

तृतीये गदपानन्तु हितन्नस्ये तथाञ्जने ॥४७॥

तीसरे वेगमें औषधोंको प्यावे और नस्यमें तथा अंजनमें औषधोंका सेवन कराना उचित है ॥४७॥

चतुर्थे स्नेहसम्मिश्रं पाययेतागदं भिषक् ॥
पञ्चमे क्षौद्रमधुकक्वाथयुक्तं प्रदापयेत् ॥४८॥

चौथे वेगमें स्नेहयुक्त औषधोंका पान कराना उचित है और पांचवें वेगमें शहद मुलहटी इन्होंका क्वाथ बनाके पिलाना उचित है ॥४८॥

षष्ठेऽतिसारवत्सिद्धिरवपीडश्च सप्तमे ॥
मूर्ध्नि काकपदं कृत्वा सासृग्वापि सितं क्षिपेत् ॥४९॥

छठे वेगमें अतिसारकी तरह इलाज करे और सातवें वेगमें अवपीडनविधि करे और मस्तक पर काकपद संज्ञक करके और रुधिर सहित मांस वहां स्थापित करे ॥४९॥

वेगान्तरे त्वन्यतमे कृते कर्म्मणि शीतलाम् ॥
यवागूं सघृतक्षौद्रामिमां दद्याद्विचक्षणः ॥५०॥

और सब कोईसे वेगोंमें शीतलकर्म करे तथा घृत और शहद सहित यवागू पिलावे ॥५०॥

कोषातक्योग्निकः पाठा सूर्यवल्ल्यमृताभयाः ॥
शिरीषः किणिही शेलुर्गिर्य्याह्वरजनीद्वयम् ॥५१॥

कडुई तोरी, चीता, पाठा, ब्राह्मी, गिलोय, हरडै, शिरस, सफेद हुंगा, ल्हेसवा, चिछूंदरी अर्थात् गिरिकर्णी, हलदी, दारुहलदी ॥५१॥

पुनर्नवा हरेणुश्च त्रिकटुः सारिवे बला ॥
एषां यवागूर्निः क्वाथे कृता हन्ति विषद्वयम् ॥५२॥

सांठी, सफेद सांठी, हरेणु, सूंठ, मिरच, पीपल, सारिवा, खरेंहटी इनके क्वाथमें बनाई हुई यवागू देनेसे दोनों प्रकारके विषोंका नाश होता है ॥५२॥

मधुकं तगरं कुष्ठं भद्रदारुहरेणवः ॥
पुन्नागैलैलवालूनि नागपुष्पोत्पलं सिता ॥५३॥

मुलहटी, तगर, कूट, भद्रदारु, हरेणु, जायफल, एलवा, नागकेशर, कमल, मिसरी ॥५३॥

विडंगं चंदनं पत्रं प्रियंगु ध्यामकं तथा ॥
हरिद्रे द्वे बृहत्यौ च सारिवे च स्थिरा सहा ॥५४॥

विडंग, चंदन, तेजपात, मालकांगनी, रोहिषतृण, हलदी, दारुहलदी, दोनों कटेहली, दोनों सारिवा, सालवण, सेवती, गुलाब ॥५४॥

कल्कैरेषां घृतं सिद्धमजेयमिति विश्रुतम् ॥
विषाणि हन्ति सर्वाणि शीघ्रमेवाजितं क्वचित् ॥५५॥

इनका कल्क बना उसको घृतमें पकावे यह घृत अजेय संज्ञक कहलाता है यह सब विषोंको शीघ्रही जीत लेता है ॥५५॥

दूषीविषार्तं सुस्विन्नमूर्ध्वञ्चाधश्च शोधितम् ।।
पाययेतागदं नित्यमिमं दूषीविषापहम् ।।५६।।

दूषीविषसे पीड़ित पुरुषको पसीना दिलाकर जुलाब दिलवावे और वमन करवावे और इस औषधरूप दूषीविषको नाशनेवाले घृतको पिलावे ।।५६।।

पिप्पल्यो ध्यामकं मांसी सावरः परिपेलवम् ।।
सुवर्च्चिका ससूक्ष्मैला तोयं कनकगैरिकम् ।।५७।।

पीपल रोहिषतृण बालछड़ लोध क्षुद्र मोथा साजीखार छोटी इलायची वाला सोनागेरू ।।५७।।

क्षौद्रयुक्तो गदो ह्येष दूषीविषमपोहति ।।
एष नाम्ना विषारिस्तु न चान्यत्रापि वार्य्यते ।।५८।।

इन औषधोंको सहदेईके संग पीनेसे दूषीविषका नाश होता है और यह विषारिनामवाला औषध है इस वास्ते अन्य विषोंमें भी वर्जित नहीं है ।।५८।।

ज्वरे दाहे च हिक्कायामानाहे शुक्रसंक्षये ।।
शोफेऽतिसारे मूर्च्छायां हृद्रोगे जठरेपि वा ।।५९।।

और ज्वर, दाह, हिचकी, आनाह, वीर्यक्षय, सूजन, अतिसार, मूर्च्छा, हृद्रोग, पेटके रोग ।।५९।।

उन्मादो वेपथुश्चैव ये चान्ये स्युरुपद्रवाः ।।
यथास्वं तेषु कुर्वीत विषघ्नैरौषधैः क्रियाम् ।।६०।।

उन्माद, कंपना और अन्य उपद्रव इन सबोंमें विधिसे विषनाशक औषधों द्वारा इलाज करना चाहिये ।।६०।।

साध्यमात्मवतः सद्यो याप्यं संवत्सरोत्थितम् ।।
दूषीविषमसाध्यन्तु क्षीणस्याहितसेविनः ।।६१।।

इति विषतंत्रचिकित्साप्रकाशे द्वितीयतंत्रम् ।।२।।

शरीरमें जो तत्काल उत्पन्न हुआ हो वह साध्य विष कहलाता है और २ वर्षसे उत्पन्न हुआ विष याप्य कहलाता है और अहितसेवीके और क्षीणपुरुषके दूषीविष असाध्य हो जाता है ॥६१॥

इति विषतंत्रचिकित्साप्रकाशे हिंदीटीकायां द्वितीयं तंत्रम् ।२॥

तृतीयतंत्रम् ३

अथातो जङ्गमविषविज्ञानीयं व्याख्यास्यामः ॥

इसके अनंतर जंगमविष विज्ञानीय तंत्रको कहते हैं।

जङ्गमस्य विषस्योक्तान्यधिष्ठानानि षोडश ॥
समासेन मया यानि विस्तरस्तेषु वक्ष्यते ॥१॥

जंगमविषके अधिष्ठान १६ जो कहे हैं, उनको विस्तार से कहता हूं, आप मुझसे सुनें ॥१॥

तत्र दृष्टिनिश्वासं दंष्ट्रानखमूत्रपुरीषशुक्रलालार्तव-
मुखसन्दंशविशर्द्धितगुदास्थिपित्तशूकशवानीति ॥२॥

दृष्टि निश्वास दंष्ट्रा नख मूत्र विष्ठा वीर्य राल आर्तव मुखसंदंश विशर्द्धित गुदा अस्थि पित्त शूक शव इनमें जंगमविष होता है ॥२॥

तत्र दृष्टिनिश्वासविषास्तु दिव्याः सर्पा भौमास्तु दंष्ट्राविषाः ॥३॥

दृष्टिनिश्वासमें विषवाले दिव्यसर्प हैं और पृथ्वीमें होनेवाले सर्पोंकी दंष्ट्रोंमें विष होता है ॥३॥

मार्जारश्ववानरमकरमण्डूकपाकमत्स्यगोधाशम्बूकप्रचलाक-
गृहगोधिकाचतुष्पादकीटास्तथान्येदंष्ट्रानखविषाः ॥४॥

बिलाव, कुत्ता, वानर, मगर, मच्छ, मेंडक, पाक, मत्स्य, गोधा, शंबूक, प्रचलाक, गृहगोधा और चतुष्पादजीव; कीड़े ये सब दंष्ट्रानखमें विषवाले हैं ॥४॥

छिपिटपिच्चटककषायवासिकसर्षपवासिकतोट
कवर्चःकीटकौण्डिल्यकाः शकृन्मूत्रविषाः ।।५।।

चिपिट, पिच्चटक, कषायवासिक, सर्षपवासिक तोटक, वर्चकीट, कौंडिल्यक ये विष्ठामूत्रमें विषवाले हैं ।।५।।

मूषिकाः शुक्रविषाः ।।६।।

मूषिकाके शुक्रमें विष होता है ।।६।।

लूताश्च लालामूत्रपुरीषमुखसन्दंशनखशुक्रार्तवविषाः ।।७।।

कमडीके रालमें और मूत्रमें तथा विष्ठा, मुखसंदंश नख शुक्र आर्तव इन सबोंमें विष होता है ।।७।।

वृश्चिकविश्वम्भरराजीवमत्स्योच्चिटिङ्गाः
समुद्रवृश्चिकाश्चालविषाः ।।८।।

बिच्छू, विश्वंभर, राजीवमत्स्य, उच्चिटिंग, समुद्रबिच्छू इनकी रालमें और आर्तवमें विष होता है ।।८।।

चित्रशिरःशरावकुर्दिशतदारुकारिमेदकशारिकामुखा ।।
मुखसंदंशविशर्द्धितमूत्रपुरीषविषाः ।।९।।

चित्रशिर, जीव, सराव, कुर्दिशत, दारुक, अरिमेदक और शारिका आदिक ये सब मुखसंदंश विशर्द्धित मूत्रपुरीषमें विषवाले हैं ।।९।।

मक्षिकाकणभजलौका मुखसन्दंशविषाः ।।१०।।

मक्षिका, कणभ, कीटक, जोंख ये मुख और संदंशमें विषवाले हैं।।१०।।

विषहतास्थिसर्पकण्टकवरटीमत्स्यास्थिचेत्यस्थि विषाणि।।
शकुलीमत्स्यरक्तराजीचवरकीमत्स्याश्च पित्तविषाः ।।११।।

विषहत, अस्थिसर्प, कंटक, वरटी, मच्छकी, अस्थि ये अस्थिविष कहलाते हैं और शकुली, मत्स्यरक्त, राजीवमत्स्य, चरकीमत्स्यके पित्तेमें विष होता है ।।११।।

सूक्ष्मतुण्डोच्चिटिङ्गवरटीशतपदीशूकवलभिकाशृङ्गीभ्रमराः शूकतुंडविषाः ।।१२।।

सूक्ष्मतुंड उच्चिटिंग, वरटी, शतपदी, शूक, वलभिका शृंगी, भ्रमर, ये शूकतुंड विषवाले हैं ।।१२।।

कीटसर्पदेहागतासवः शवविषाः शेषास्त्वनुक्ता
मुखसन्दंशविषेष्वेव गणयितव्या भवन्ति चात्र ।।१३।।

कीट सर्प जो मरे हुये हों वे सब विष कहलाते हैं और नहीं कहे हुये हैं वे भी मुखसंदंश विषहीमें गिनने चाहिये ।।१३।।

राज्ञोऽरिदेशे रिपवस्तृणाम्बुमार्गान्नधूमश्वसनान्विषेण ।।
संदूषयन्त्येभिरतिप्रदुष्टान्विज्ञाय लिङ्गैरविशोधयेच्च ।।१४।।

राजाके शत्रुओंके देशमें जो यदि शत्रुजन तृणजल मार्ग, धूमाको विष द्वारा दूषित कर देवे तो उन अति दुष्टोंको इन चिह्नों से जानकर उनका शोधन करे ।।१४।।

दुष्टं जलं पिच्छिलमुग्रगन्धि फेणान्वितं राजिभिरावृतञ्च ।।
मण्डूकमत्स्यं म्रियते विहङ्गा मत्ताश्चसानूपचरा भ्रमन्ति ।।१५।।

चिह्न कहते हैं–जल बुरा हो जाय और झागोंवाला हो जाय और उग्र गंधवाला तथा पंक्तियों से आवृत हो जाय और उसमें रहनेवाले मेंडक, मत्स्य मर जावें और मदोन्मत्त तथा अनूप देशके पक्षी वहां भ्रमको प्राप्त हो जावें ।।१५।।

मज्जन्ति ये चात्र नराश्च नागास्ते छर्द्दिमोहज्वरदाह शोफान्।।१६।।

उस जलमें जो मनुष्य, घोड़े, हस्ती ये प्रवेश हो जावें तो वे छर्द्दि, मोह, सूजन, ज्वरदाहको प्राप्त होवें ।।१६।।

गच्छन्ति तेषामपहृत्य दोषान् दुष्टं जलं शोधयितुं यतेत ।।
धवाश्वकर्णासनपारिभद्राः सपाटलाः सिद्धकमोक्षकौ च ।।१७।।

तव उस दुष्ट जलके शोधनके वास्ते यत्न करे कि धव, सरल, आसनानीव पाटल सिद्धक मोखा वृक्ष ।।१७।।

दग्धाःसराजद्रुमसोमवल्कास्तद्भस्म शीतं विकिरेत्सरःसु ॥
भस्माञ्जलिं चापि घटे निधाय विशोधयेदीक्षितमेवमम्भः ॥१८॥

रोहिषतृण, अमलताश, सफेद खैरकी भस्म बनाया सरोवरों में बिखेर देवे अथवा उस सरोवरसे एक घड़ाभरकर उसमें अंजुली प्रमाण वह भस्म मिलाय उसको शोध लेवे ॥१८॥

क्षितिप्रदेशं विषदूषितन्तु शिलास्थलीं तीर्थमथेरिणं वा ॥
स्पृशंति गात्रेण तु येन येन गोवाजिनागोष्ट्रखरा नरा वा ॥१९॥

विषसे दूषित पृथ्वीको तथा शिलास्थलीको जिस २ अंगसे स्पर्श करे, गौ, अश्व, हस्ती, ऊंट, गधे, मनुष्य इनमेंसे जो कोई स्पर्श कर लेवे ॥१९॥

तच्छूयतां यान्त्यथ दह्यते च विशीर्यते रोमनखास्तथैव ॥
तत्राप्यनन्तां सह सर्वगन्धैः पिष्ट्वा सुराभिर्विनियोज्य मार्गम् ॥२०॥

वह शून्यताको प्राप्त हो जावें दग्ध हो और रोम नख ये विशीर्ण हो जायें, वहां धमांसाको संपूर्ण गंधों से युक्त पीसकर उसमें मदिरा मिलाय विष से विषदूषित मार्गको छिड़के और दूध छिड़के ॥२०॥

सिञ्चेत्पयोभिस्तु मृदन्वितैस्तं विडङ्गपाठाकटुभिस्तिलैर्वा ॥
तृणेषु भक्तेषु च दूषितेषु सीदन्ति मूर्च्छन्ति वमंति चान्ये ॥२१॥

मृत्तिकासे युक्त वायविडंग, पाठा, सफेद पाटल, तिलको पीसकर बिखेरे और विषसे युक्त तृण मार्गमें हों तो उनसे मूर्च्छा हो वमन हो ॥२१॥

विड्भेदमृच्छन्त्यथवा म्रियन्ते तेषां चिकित्सां प्रणयेद्यथोक्ताम् ॥
विषापहैर्वाप्यगदैर्विलिप्य वाद्यानि चित्राण्यपिवादयेत् ॥२२॥

किसीके विडभेद अर्थात् जुलाव लग जावे और कई मर जावें सो उनकी यथोक्त चिकित्सा करे कि विषनाशक औषधोंसे अनेक विचित्र बाजोंको लीपकर फिर उनको बजवावे ॥२२॥

तारः सुतारः ससुरेन्द्रगोपः सर्वैश्च तुल्यः कुरुविन्दभागः ॥
पित्तेन युक्तैः कपिलान्वयेन वाद्यप्रलेपो विहितः प्रशस्तः ॥२३॥

सुंदरकपूर, इन्द्रगोप अर्थात् तीजसंज्ञक जीव और इन सबके समान भाग कुरुविंद अर्थात् भारे चावल विशेष और गौका पित्ता इन सबको पीस बाजोंके लेप करना श्रेष्ठ कहा है ॥२३॥

वाद्यस्य शब्देन हि यांति नाशं विषाणि घोराण्यपि यानि सन्ति ॥
धूमेनिले वा विषसंप्रयुक्ते खगाः श्रमार्ताः प्रपतन्ति भूमौ ॥२४॥

उन बाजोंके शब्द से वे घोर विष नाशको प्राप्त हो जावें और धूमां तथा वायु विषयुक्त हो रहा हो तो श्रमसे पीड़ित पक्षी पृथ्वी में गिरने लग जावें ॥२४॥

कासं प्रतिश्यायशिरोरुजश्च भवन्ति तीव्रानयनामयाश्च ॥
लाक्षाहरिद्रातिविषाभयाब्दहरेणुकैलादलवल्ककुष्ठम् ॥२५॥

मनुष्योंके खांसी पीनस शिरोरोग और तीव्र नेत्र रोग ये हो जावें तब लाख हलदी अतीश हरड़े नेत्रवाला हरेणुक इलायचीके पत्ते कूठ॥२५॥

प्रियंगुकाञ्चाप्यनले निधाय धूमानिलौ चापि विशोधयेत ॥२६॥

मालकांगनी मणियारी नमक को उस अग्निमें डालकर धूमेंको और अग्निको शोध लेवे ॥२६॥

प्रजामिमात्मयोनेर्ब्रह्मणः सृजतः किल ॥
अकरोदसुरो विघ्नं कैटभो नाम दर्पितः ॥
ततः क्रुद्धस्य वै वक्त्राद्ब्रह्मणस्तेजसो निधेः ॥२७॥
क्रोधो विग्रहवान्भूत्वा निःपपाताथ दारुणः ॥
स तं ददाह गर्जन्तमन्तकाभं महाबलम् ॥ २८॥

पहिले इस सब प्रजाको रचते हुये ब्रह्माजीके कैटभनाम वाला अभिमानी दैत्य विघ्न करने लगा तब तेजके सागर और क्रोध करते हुये

ब्रह्माजीके मुखसे दारुण क्रोध शरीरवाला होकर निकला पश्चात् वह क्रोध गर्जता हुआ और कालके सदृश तथा महाबलवाला॥२७॥२८

ततोऽसुरं घातयित्वा तत्तेजो वर्द्धताद्भुतम् ॥
ततो विषादो देवानामभवत्तं निरीक्ष्य वै ॥२९॥

ऐसे दैत्यको मार फिर वह अद्भुत तेज बढ़ने लगा तब उसको देखकर देवताओंको विषाद हुआ ॥२९॥

विषादजननत्वाच्च विषमित्यभिधीयते ॥
ततः सृष्टा प्रजाशेषं तदा तं क्रोधमीश्वरः ॥३०॥

विषादको उत्पन्न करनेवाला होने से उसको विष कहते हैं पश्चात् ब्रह्माजीने सब प्रजाको रचकर उस क्रोधको ॥३०॥

विन्यस्तवान्स भूतेषु स्थावरेषु चरेषु च ॥
यथाव्यक्तरसं तोयमन्तरिक्षान्महीगतम् ॥३१॥

स्थावर और चरभूतोंविषे स्थापित कर दिया यथा अप्रकट रसरूपी जल आकाशसे पृथ्वीमें आया हुआ हो ॥३१॥

तेषु तेषु प्रदेशेषु रसं तं तं नियच्छति ॥
एवमेवं विषं यद्यद्द्रव्यं वाप्यवतिष्ठते ॥३२॥

जैसी २ वस्तुके प्रदेशमें आता है उसी २ रसको प्राप्त कर देता है ऐसेही विष जिस २ द्रव्यको प्राप्त होकर ठहरता है ॥३२॥

स्वभावादेव तं तस्य रसं समनुवर्तते ॥
विषे यस्माद्गुणास्सर्वे तीक्ष्णाः प्रायेण सन्ति हि ॥३३॥

स्वभावसेही उसी रसको अपने रसरूप कर लेता है और उस कारण से विशेष करके विषमें सब तीक्ष्ण गुण हैं ॥३३॥

विषं सर्वमतो ज्ञेयं सर्वदोषप्रकोपणम् ॥
ते तु वृत्तिं प्रकुपिता जहति स्वां विषार्दिताः ॥३४॥

इस कारण विष सब दोषोंका कोप करता है और वे दोष विषसे

पीड़ित हुए और कुपित हुए अपनी वृत्तिको त्याग देते हैं और विष पाकको नहीं प्राप्त होता है ॥३४॥

नोपयाति विषं पाकमतः प्राणान्रुणद्धि च ॥
श्लेष्मणा वृत्तमार्गत्वादुच्छ्वासोस्य निरुध्यते ॥३५॥

इस कारण प्राणोंको रोक देता है और कफ से आवृत तथा गीलापन होनेसे पुरुषका ऊंचा श्वास रुक जाता है ॥३५॥

विसंज्ञः सति जीवेपि तस्मात्तिष्ठति मानवः ॥
शुक्रवत्सर्वसर्पाणां　विषं　सर्वशरीरगम् ॥३६॥

जीव संज्ञा रहित हो जाता है, मनुष्य ठहर जाता है और वीर्यकी तरह सब सर्पोंका विष सब शरीरमें प्राप्त हो जाता है ॥३६॥

क्रुद्धानामेति चाङ्गेभ्यः शुक्रं निर्मन्थानादिव ॥
तेषां बडिशवद्दंष्ट्रास्तासु सज्जति चागतम् ॥३७॥

क्रोधमें आए हुये सर्पोंके अंगसे विष प्राप्त हो जाता है जैसे निर्मंथनकर्मसे वीर्य्य वैसे और उन सर्पोंकी बडिश अर्थात् मत्स्यवेधक शस्त्रसरीखी दंष्ट्रा है सो उनमें आया हुआ विष युक्त हो जाता है ॥३७॥

अनुद्वृत्ता विषं तस्मान्न मुञ्चन्ति च भोगिनः ॥
यस्मादत्यर्थमुष्णञ्च तीक्ष्णं च　पठितं विषम् ॥३८॥

इसी कारण विना काटे हुये सर्प विषको नहीं छोड़ते हैं इसी कारण विष अति गरम और तीक्ष्ण कहा है ॥३८॥

अतः सर्वविषेषूक्तः परिसेकस्तु शीतलः ॥
मन्दकीटेषु नात्युक्तं बहुवातकफं विषम् ॥३९॥

सब विषोंमें शीतल परिसेक कहा है और मदकीटोंमें वहुत गरम विष नहीं कहा है विशेषकर वात कफ वाला विष कहा है ॥३९॥

अतः कीटविषे चापि खेदो न प्रतिषिध्यते ॥
कीटैर्दष्टानुग्रविषैः　सर्पवत्समुपाचरेत्　॥४०॥

इस कारण कीटविषमें स्वेदका निषेध नहीं है और उग्र विषों में कीट आदिकोंसे दंशे हुएका इलाज सर्पके इलाजकी तरह करना चाहिये ॥४०॥

स्वभावादेव तिष्ठेत्तु प्रहारादंशयोर्विषम् ॥
व्याप्य सावयवं देहं दिग्धविद्धाहिदष्टयोः ॥४१॥

स्वभावहीसे कांधों में विष ठहरता है और विष आदि लेपवाले शस्त्रमें तथा सर्पसे डसे हुए जीवके सब अंगोंमें विष ठहरकर कांधोंमें स्थित रहता है ॥४१॥

लौल्याद्विषान्वितं मांसं यः खादेन्मृतमात्रयोः ॥
यथा विषं सरोगेण क्लिश्यते म्रियतेपि वा ॥४२॥

अतः जो कोई मरा हुआ उस जीवके कंधोंके मांसको खा लेवे वह विषकी तरह रोगसे दुःखी होता है अथवा मर भी जाता है ॥४२॥

अतश्चाप्यनयोर्मांसमभक्ष्यं मृतमात्रयोः ॥
मुहूर्तात्तदुपादेयं प्रहारादंशवर्जितम् ॥४३॥

इस कारण इन मृतमात्र कंधोंका मांस भक्षण नहीं करना चाहिये और मुहूर्त प्रमाण पीछे कंधोंके विना अन्य जगहके मांसका निषेध नहीं है ॥४३॥

सवातं गृहधूमाभं पुरीषं योतिसार्य्यते ॥
आध्मातोऽत्यर्थमुष्णास्रो विवर्णः सादपीडितः ॥४४॥

और वात सहित घरके धूमेके समान वर्णवाला विष्ठा जो वारंवार दस्त हो जावे और आध्मान हो उष्णस्राव हो विवर्ण हो और मंदाग्निसे पीड़ित होजावे ॥४४॥

उद्वमत्यथ फेणञ्च विषपीतं तमादिशेत् ॥
न चास्य हृदयं वह्निर्विषदुष्टं दहत्यपि ॥
तद्धिस्थानं चेतनायाः स्वभावाद्व्याप्य तिष्ठति ॥४५॥

और झागोंका वमन करे उसको विष पिया हुआ जानना चाहिये और उस पुरुषके विषदुष्ट हृदयको अग्नि दग्ध नहीं करती है क्योंकि वह बुद्धिका स्थान है वहां बुद्धि स्वभावसे व्याप्य होकर ठहरती है ॥४५॥

अश्वत्थदेवायतनश्मशानवल्मीकसंध्यासु चतुष्पथेषु ॥
याम्ये सपित्र्ये परिवर्जनीया ऋक्षे नरा मर्मसु ये च दष्टाः ॥४६॥

और पीपल देवताका मकान श्मशान बांबी संध्यासमय चतुष्पथ यज्ञस्थान पितरोंका यज्ञ स्थान और आश्लेषा आदि नक्षत्र और मर्मस्थान इनमें डसे हुये पुरुषोंका इलाज नहीं करे ॥४६॥

दार्व्वीकराणां विषमाशुघाति सर्वाणि चोष्णे द्विगुणीभवन्ति ॥
अजीर्णपित्तातपपीडितेषु बालप्रमेहेष्वथ गर्भिणीषु ॥४७॥

दर्वीकर सर्पोंका विष आशुघाति अर्थात् शीघ्रही नाश कर देता है और सब विषोंसे दुगुना गरम होता है अजीर्ण पित्त आतप इनसे पीड़ित बालक, प्रमेह रोगवाली गर्भिणी ॥४७॥

वृद्धातुरक्षीणबुभुक्षितेषु रूक्षेषु भीरुष्वथ दुर्दिनेषु ॥
शस्त्रक्षते यस्य न रक्तमस्ति राज्यो लताभिश्च न संभवन्ति ॥४८॥

वृद्ध आतुर क्षीण पुरुष भूखा रूक्ष पुरुष डरपोक इनका इलाज न करना चाहिये और मेघसे आच्छादित दिनमें और शस्त्रसे काटनेसे जिसके रुधिर नहीं निकले उसका ॥४८॥

शीताभिरद्भिश्च न रोमहर्षो विषाभिभूतं परिवर्जयेत्तम् ॥
जिह्वा सिता यस्य च केशशातो नासावभङ्गश्च सकण्ठभङ्गः ॥४९॥

और शीतल जल छिड़कनेसे जिसकी रोमावली खड़ी न हो ऐसे विषसे युक्त पुरुषको वर्ज देवे और जिसकी जिह्वा सफेद हो जावे और बाल गिरने लग जावें और नासिका तथा कंठभंग होवे ॥४९॥

कृष्णः सरक्तः श्वयथुश्च दंशे हन्वोः स्थिरत्वञ्च स वर्जनीयः ॥
वर्तिर्घना यस्य निरेति वक्त्राद्रक्तं स्रवेदूर्ध्वमधश्च यस्य ॥५०॥

और काला तथा लाल सूजन डसे हुएकी जगह हो जावे और ठोडी बंध होजावे ऐसा पुरुष इलाजसे वर्जित है और जिसके मुखमें करडी बत्ती करके देवे वह बाहर निकल आवे और मुख द्वारा तथा दस्तोंके द्वारा रुधिर गिरै ।।५०।।

दंष्ट्रानिपातः सकलश्च यस्य तञ्चापि वैद्यः परिवर्जयेत्तु ।।
उन्मत्तमत्यर्थमुपद्रुतं वा हीनस्वरं वाप्यथ वा विवर्णम् ।।५१।।

और सब दांत गिर पड़ें ऐसे पुरुषको वैद्य वर्ज देवे और अति उन्मत हो जाय अथवा उपद्रव हो जाय तथा हीन स्वर हो जावे अथवा विवर्ण हो जावे ।।५१।।

सारिष्टमत्यर्थमवेगिनञ्च जह्याच्च तं कर्म न तत्र कुर्यात् ।।५२।।
इति विषतंत्रचिकित्साप्रकाशे तृतीयं तंत्रम् ।।३।।

अति अरिष्टवाला और वेगसे रहित ऐसे विषवालेको त्याग देवे उसका इलाज न करे ।।५२।।

इति विषतंत्रचिकित्साप्रकाशे हिन्दीटीकायां तृतीयं तन्त्रम् ।।३।।

चतुर्थतंत्रम् ४

अर्थातः सर्पदंशविषविज्ञानीयं व्याख्यास्यामः ।।

इसके अनंतर सर्पदंशविषको जाननेके लिये कहेंगे ।।

धन्वंतरिं महाप्राज्ञं सर्वशास्त्रविशारदम् ।।
पादयोरुपसंगृह्य सुश्रुतः परिपृच्छति ।।१।।

अब शास्त्रोंमें विशारद और महाप्राज्ञ ऐसे धन्वंतरिके पैरोंको पकड़ सुश्रुत ने प्रश्न किया ।।१।।

सर्पसंख्यां विभागं च दष्टलक्षणमेव च ।।
ज्ञानं च विषवेगानां भगवन् वक्तुमर्हसि ।।२।।

कि हे भगवन् ! सर्पोंकी संख्या और विभाग और डसे हुएके लक्षण और विषके वेगोंका ज्ञान आप हमसे सब कहिये ॥२॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्राब्रवीद्भिषजां वरः ॥
असंख्या वासुकिमुखा विख्यातास्तक्षकादयः ॥३॥

उसके वचन सुनकर वैद्योंमें श्रेष्ठ धन्वंतरिने कहा कि वासुकि है मुख्य जिनमें, ऐसे तक्षक आदि सर्प असंख्यात कहे हैं ॥३॥

महीधराश्च नागेन्द्रा हुताग्निसमतेजसः ॥
ये चाप्यजस्रं गर्जन्ति वर्षन्ति च तपन्ति च ॥४॥

और महीधर सर्प अग्निके समान तेजवाले हैं और जो निरंतर गर्जे और वर्षे तथा तप करें ॥४॥

ससागरा गिरिद्वीपा यैरियं धार्य्यते मही ॥
क्रुद्धा निःश्वासदृष्टिभ्यां ये हन्युरखिलं जगत् ॥५॥

और सागर पर्वत द्वीप सहित पृथ्वी जिन्होंने धारण कर रक्खी है और जो क्रोध किये हुये निःश्वास और दृष्टिकार्यसे संपूर्ण जगत्को हनन कर देवें ॥५॥

नमस्तेभ्योस्ति नो तेषां कार्यं किञ्चिच्चिकित्सया ॥
ये तु दंष्ट्राविषा भौमा ये दशंति च मानुषान् ॥६॥

उनके लिये नमस्कार है और उनकी कुछ चिकित्सा नहीं करनी चाहिये और जो दंष्ट्राविषवाले पृथ्वीमें रहनेवाले सर्प मनुष्योंको डस-लेवें ॥६॥

तेषां संख्यां प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥
अशीतिस्त्वेव सर्पाणां भिद्यते पञ्चधा तु सा ॥७॥

उनकी यथावत् चिकित्सा मैं कहूंगा और उन सब सर्पोंके भेद हैं उनमें भी पांच प्रकारके भेद ये हैं ॥७॥

दर्वीकरा मण्डलिनो राजिमन्तस्तथैव च ॥
निर्विषा वैकरञ्जाश्च त्रिविधास्ते पुनः स्मृताः ॥८॥

दर्वीकर मंडली राजिमंत निर्विष वैकरंज ऐसे और उनके भी तीन भेद हैं जैसे ॥८॥

दर्वीकरा मण्डलिनो राजिमन्तश्च पन्नगाः ॥
तेषु दर्व्वीकरा ज्ञेया विंशतिः षट् च पन्नगाः ॥९॥

दर्वी अर्थात् कुडछी सरीखे फणवाले मंडलवाले राजिमंत उनमें २६ प्रकारके भेदवाले दर्वीकरसंज्ञक सर्प हैं ॥९॥

द्वाविंशतिर्मण्डलिनो राजिमन्तस्तथा दश ॥
निर्विषा द्वादश ज्ञेया वैकरञ्जास्त्रयस्तथा ॥१०॥

और वाईस २२ प्रकारके मंडली सर्प कहे हैं और दश प्रकारके राजिमंत और वारह १२ प्रकारके निर्विष सर्प हैं और तीन प्रकारके वैकरंज सर्प हैं ॥१०॥

वैकरञ्जोद्भवाः सप्त चित्रा मण्डलिराजिलाः ॥
पदाभिमृष्टा दुष्टा वा क्रुद्धा ग्रासार्थिनोपि च ॥११॥

और वैकरंज सर्पोंसे उत्पन्न हुये सात प्रकारके सर्प हैं चित्रित और मंडलवाले और पंक्तिवाले ऐसे हैं ॥११॥

ते दशन्ति महाक्रोधास्तद्धि त्रिविधमुच्यते ॥
सर्पितं रदितं वापि तृतीयमथ निर्विषम् ॥१२॥

सो वे सर्प पैरके नीचे दबनेसे दूषित हुए क्रोध किये हुए और ग्रासकी इच्छा करते हुए वे महाक्रोध करके डसते हैं सो वह तीन प्रकारके सर्पित रदित निर्विष ये हैं ॥१२॥

सर्पाङ्गाभिहतं केचिदिच्छन्ति खलु तद्विदः ॥
पदानि यत्र दन्तानामेकं द्वे वा बहूनि च ॥१३॥

और सर्पके अंगसे अभिहत हुए पुरुषको देखनेकी इच्छा तद्वेत्ता वैद्य करते हैं जहां दांतोंके एक अथवा दो तथा तीन अथवा घने डंक लग रहे हों ॥१३॥

निमग्नान्यल्परक्तानि यान्युद्धृत्य करोति हि ॥
चञ्चुमालकयुक्तानि वैकृत्यकरणानि च ॥१४॥

और भीतरको गड़कर उद्धृत हो रहे हों और चंचुवोंसे युक्त हों और विकारके करनेवाले हों ॥१४॥

संक्षिप्तानि सशोफानि विद्यात्तत्सर्पितं भिषक् ॥
राज्यः सलोहिता यत्र नीलाः पीताः सितास्तथा ॥१५॥

और संक्षिप्त हों तथा सूजनसे युक्त हों वह वैद्यको सर्पित जानना चाहिये और रक्तवर्णवाली राजी हों और नीली पीली तथा सफेद वर्णवाली पंक्ति हों ॥१५॥

विज्ञेयं रदितं तत्तु ज्ञेयमल्पविषं च तत् ॥
अशोफमल्पदुष्टासृक्प्रकृतिस्थस्य देहिनः ॥१६॥

रदितदंश जानना उसमें अल्प विष होता है और सूजनसे रहित हों अल्प दुष्ट रुधिर हो और वह पुरुष अपनी प्रकृतिमें स्थित हो ॥१६॥

पदं पदानि वा विद्यादविषं तच्चिकित्सकः ॥
सर्पस्पृष्टस्य भीरोर्हि भयेन कुपितोनिलः ॥१७॥

उसके एक पद तथा कईक पद भी विषसे रहित जानने और जिसके सर्प डस जावे ऐसे डरपोक पुरुषके भयसे कुपित हुआ वायु ॥१७॥

कस्यचित्कुरुते शोफं सर्पाङ्गाभिहतं तु तत् ॥
व्याधितोद्विग्नदष्टानि ज्ञेयान्यल्पविषाणि तु ॥१८॥

किसी किसी के सूजन कर देता है सो उसको व्याधिमें तो सर्वाङ्गाभिहत उद्विग्न डसा हुआ जानना और विष अल्प जानना ॥१८॥

तथातिवृद्धबालातिदष्टमल्पविषं स्मृतम् ॥
सुवर्णदेवब्रह्मर्षियक्षसिद्धनिषेविते ॥१९॥

और वैसेही अति वृद्ध और बालक सर्पसे डसे हुए पुरुषके अल्प विष होता है और सुवर्ण देव ब्रह्मर्षि यक्ष सिद्ध इनसे सेवित ॥१९॥

विषघ्नौषधियुक्ते च देशे न क्रमते विषम् ॥
रथाङ्गलाङ्गलच्छत्रस्वस्तिकांकुशधारिणः ॥२०॥

और विषनाशक औषधोंसे युक्त देशमें विष नहीं फैलता है और रथका चक्र हल छत्र स्वस्तिक अंकुशको धारण करनेवाले ॥२०॥

ज्ञेया दर्वीकराः सर्पाः फणिनः शीघ्रगामिनः ॥
मण्डलैर्विविधैश्चित्राः पृथवो मन्दगामिनः ॥२१॥

और फणवाले और शीघ्रगामी ऐसे दर्वीकर सर्प जानने चाहिये और अनेक प्रकार के मंडलोंसे युक्त, चित्रित. भारी और मंदगामी ॥२१॥

ज्ञेया मण्डलिनः सर्पाः ज्वलनार्कसमप्रभाः ॥
स्निग्धा विविधवर्णाभिस्तिर्य्यगूर्ध्वन्तु राजिभिः ॥२२॥

और अग्नि तथा सूर्यके समान कांतिवाले सर्प मंडली जानने और स्निग्ध तथा अनेक वर्णोंवाली तिरछी ऊंची पंक्तियोंसे युक्त ॥२२॥

चित्रिता इव ये भान्ति राजिमन्तस्तु ते स्मृताः ॥
मुक्तारूप्यप्रभा ये च कपिला ये च पन्नगाः ॥२३॥

और चित्रितकी तरह प्रकाशित हों ऐसे सर्प राजिमंत कहे हैं और मोती चांदी तथा कपिल वर्णवाले जो सर्प हैं ॥२३॥

सुगन्धिनः सुवर्णाभास्ते जात्या ब्राह्मणाः स्मृताः ॥
क्षत्रियाः स्निग्धवर्णास्तु पन्नगा भृशकोपनाः ॥२४॥

और सुगंधवाले तथा सुवर्णसरीखी कांतिवाले ऐसे सर्प जाति से ब्राह्मण कहे हैं और चिकने वर्णवाले तथा अति कोपवाले सर्प जातिके क्षत्रिय कहे हैं ॥२४॥

सूर्य्यचन्द्राकृतिच्छत्रलक्ष्म तेषां तथाम्बुजम् ॥
कृष्णवज्रनिभा ये च लोहिता वर्णतस्तथा ॥२५॥

और सूर्य्य चंद्रमा छत्र तथा कमलसरीखे जिनके चिह्न होते हैं और जो काले हों तथा वज्रसरीखी कांतिवाले सर्प और रक्तवर्णवाले सर्प ॥२५॥

धूम्राः पारावताभाश्च वैश्यास्ते पन्नगाः स्मृताः ॥२६॥

और धूम्रवर्णवाले तथा कबूतरसरीखे वर्णवाले जो सर्प हैं वे जातिके वैश्य कहे हैं ॥२६॥

महिषद्वीपिवर्णाभास्तथैव परुषत्वचः ॥
भिन्नवर्णाश्च ये केचिच्छूद्रास्त परिकीर्तिताः ॥२७॥

और भैंसा हाथी सरीखे वर्णवाले और करड़ी त्वचावाले और भिन्न वर्णवाले जो सर्प हैं वे शूद्र कहे हैं ॥२७॥

कोपयंत्यनिलं जंतोः फणिनः सर्व एव तु ॥
पित्तं मण्डलिनश्चापि कफं चानेकराजयः ॥२८॥

सो ये सभी सर्प प्राणियोंके वायुकोप करते हैं और मंडलि सर्प पित्त को पैदा करते हैं और अनेक पंक्तियोंवाले सर्प कफ पैदा करते हैं ॥२८॥

अपत्यमसुवर्णाभ्यां द्विदोषकरलक्षणम् ॥
ज्ञेयौ दोषैश्च दंपत्योर्विशेषश्चात्र वक्ष्यते ॥२९॥

और इन वर्णोंसे रहित वर्णोंवाला सर्प दो दोषोंको कोप करता है और दोषों द्वारा जानने चाहिये सांप सांपिनीका जोड़ा जो हो उसका विशेष भेद कहते हैं ॥२९॥

रजन्याः पश्चिमे यामे सर्पाश्चित्राश्चरन्ति हि ॥
शेषेषूक्ता मंडलिनो दिवा दर्वीकराः स्मृताः ॥३०॥

रात्रिके पिछले भागमें तो चितकबरे सर्प बलवंत हैं और बाकी पहिले पहरोंमें मंडलि सर्प और दिनमें दर्वीकर सर्प कहे हैं ॥३०॥

दर्वीकरास्तु तरुणा वृद्धा मण्डलिनस्तथा ॥
राजिमन्तो वयोमध्ये जायन्ते मृत्युहेतवः ॥३१॥

और दर्वीकर सर्प तो तरुण कहे हैं और मंडली सर्प वृद्ध कहे हैं और राजिमंत सर्प मध्य अवस्थामें मृत्युके हेतु होते हैं ॥३१॥

नकुलाकुलिता बाला वारिविप्रहताः कृशाः ॥
वृद्धा मुक्तत्वचो भीताः सर्पास्त्वल्पविषाः स्मृताः ॥३२॥

और नकुलसे आकुल तथा बालक और जलसे दुःखी हुए थके वृद्ध मुक्तत्वच डरे हुए ऐसे सर्प अल्प विषवाले कहे हैं ।।३२।।

तत्र दर्वीकराः कृष्णत्वचः सर्पा महोरगाः ।।३३।।

दर्वीकर सर्प ये हैं कि काले चर्मवाले महासर्प ।।३३।।

कृष्णोदरः श्वेतकपोतो महाकपोतो बलाहको
महासर्पः शंखपालो लोहिताक्षो गवेधुकः ।।३४।।

कृष्णोदर श्वेतकपोत महा कपोत बलाहक महासर्प शंखपाल लोहिताक्ष गवेधुक ।।३४।।

परिसर्पः खंडफणः ककुदो पद्मो महापद्मः दर्भपुच्छो दधिमुखः
पुण्डरीको भृकुटिमुखो विष्किरः ।।३५।।

परिसर्प खंडफण ककुद पद्म महापद्म दर्भपुच्छ दधिमुख पुंडरीक भृकुटीमुख विष्किर ।।३५।।

पुष्पाभिकीर्णो गिरिसर्पः ऋजुसर्पः श्वेतोदरो महाशिरा
अलगर्दो आशीविष इति ।।३६।।

पुष्पाभिकीर्ण गिरिसर्प ऋजुसर्प श्वेतोदर महाशिरा अलगर्द आशीविष इतने हैं ।।३६।।

मण्डलिनस्तु आदर्शमण्डलः श्वेतमण्डलो रक्तमण्डलश्चित्रमण्डलः
पृषतो रोध्रपुष्पो मिलिन्दको गोनसो वृद्धगोनसः ।।३७।।

और मंडलवाले सर्प ये हैं कि आदर्शमंडल श्वेतमंडल रक्तमंडल चित्रमंडल पृषत रोध्रपुष्प मिलिंदक गोनस वृद्धगोनस ।।३७।।

पनसो महापनसो वेणुपत्रकः शिशुको मदनः पालिहिरः
पिङ्गलस्तन्तुकापुष्पः पाण्डुः षड्भोऽग्निको बभ्रुः कषायः कलुषः
पारावतो हस्ताभरणश्चित्रक एणीपद इति ।।३८।।

पनस महापनस वेणुपत्रक शिशुक मदन पालिहिर पिंगलक तन्तुकापुष्प पांडु षड्भ अग्निक बभ्रु कषाय कलुष पारावत हस्ताभरण चित्रक एणीपद ये कहे हैं ।।३८।।

राजिमन्तस्तु पुण्डरीको राजिचित्रोऽङ्गुलरा-

जिर्बिदुराजिः कर्दमकस्तृणशोषकः ॥३९॥

और राजिमंत सर्प ये हैं कि पुंडरीक राजिचित्र अंगुलराजि बिंदुराजि कर्दमक तृण शोषक ॥३९॥

सर्षपकः श्वेतहनुर्दमपुष्पश्चक्रको गोधूमकः किक्साद इति ॥४०॥

सर्षपक श्वेतहनु दमपुष्प चक्रक गोधूमक किक्साद ये कहे हैं ॥४०॥

निर्विषास्तु गलगोली शूकपत्रोऽजगरो दिव्यको

वर्षाहिकः पुष्पशकली ज्योतीरथः ॥४१॥

और निर्विषसंज्ञक सर्प ये हैं कि गलगोली शूकपत्र अजगर दिव्यक वर्षाहिक पुष्पशकली ज्योतीरथ ॥४१॥

क्षीरिकः पुष्पकोऽहिपताकोऽन्धाहिको गौराहिको वृक्षेशय इति ४२॥

क्षीरिक पुष्पक अहिपताक अंधाहिक गौराहिक वृक्षेशय ये कहे हैं ॥४२॥

वैकरञ्जास्तु त्रयाणां दर्वीकरादीनां व्यतिकराज्जाताः ॥४३॥

और वैकरंज सर्प तीन जो दर्वीकर आदि सर्पोंकी व्यक्ति हैं उनसे पैदा हुये हैं सो ऐसे हैं कि ॥४३॥

तद्यथा–माकुलिः पोटगलः स्निग्धराजिरिति ॥४४॥

माकुलि पोटगल स्निग्धराजी ये हैं ॥४४॥

तत्र कृष्णसर्पेण गोनस्यां वैपरीत्येन वा जातो माकुलिः ॥४५॥

वहां काला सर्पसे गोनसीमें अथवा अन्य विपरीततासे जो उत्पन्न हो वह माकुलि कहलाता है ॥४५॥

राजिलेन गोनस्यां वैपरीत्येन वा जातः पोटगलः कृष्णसर्पेण

राजिमत्यां वैपरीत्येन वा जातः स्निग्धराजिरिति ॥४६॥

और राजिल सर्प से अथवा विपरीततासे जो उत्पन्न होता है वह स्निग्धराजि कहलाता है ॥४६॥

तेषामाद्यस्य पितृवद्विषोत्कर्षो द्वयोर्मातृवदित्येके ॥४७॥

उनमें पहिले सर्पका तो विष पिताके समान है और इन पिछले दो सर्पोंका विष इनकी माताके समान है ॥४७॥

त्रयाणां वैकरञ्जानां पुनर्दिव्यैलरोध्रपुष्पकराजिचित्रकाः
पोटगलः पुष्पाभिकीर्णो दर्भपुष्पो वेल्लितकः ॥४८॥

और तीन वैकरंजसंज्ञक सर्पोंके ये भेद हैं कि दिव्यएलक रोध्रपुष्पक राजिचित्रक पोटगल पुष्पाभिकीर्ण दर्भपुष्प वेल्लितक ये कहे हैं ॥४८॥

सप्त तेषामाद्यास्त्रयो राजिलवत्, शेषा मण्डलिवत्
एवमेतेषां सर्पाणामशीतिरिति ॥४९॥

उनमें आद्यके सात सर्प तो दर्वीकर सर्पोंकी तरह हैं और तीन राजिल सर्पोंकी तरह हैं और बाकी मंडली अर्थात् मंडलवाले सर्पोंकी तरह हैं ऐसे इन सर्पोंके अस्सी ८० भेद कहे हैं ॥४९॥

तत्र महानेत्रजिह्वास्यशिरसः पुमांसः सूक्ष्मनेत्रजिह्वास्यशिरसः स्त्रियः ॥५०॥

महानेत्र जिह्वा मुख शिर ये जिनके होवें वे पुरुष जानने और सूक्ष्मनेत्र सूक्ष्मजिह्वा सूक्ष्मशिर ये जिनके होवें वे स्त्री जानने ॥५०॥

उभयलक्षणा मन्दविषा अक्रोधा नपुंसका इति ॥५१॥

और दोनों लक्षणोंवाले और मंदविषवाले और क्रोधसे रहित ऐसे जो हैं वे नपुंसक जानने ॥५१॥

तत्र सर्वेषां सर्पाणां सामान्यत एव दष्टलक्षणं वक्ष्यामः ॥५२॥

सभी सर्पोंका सामान्यसे डसनेका लक्षण कहते हैं ॥५२॥

किं कारणं—विषं हि निशितनिस्त्रिंशाशनहुतवहदेश्यमाशुकारि मुहूर्तमप्युपेक्षितमातुरमतिपातयति न चावकाशोऽस्ति वाक्समूहमनुसर्तुं प्रत्येकमपि दष्टलक्षणेऽभिहिते सर्पत्रैविध्यं भवति तस्मात् त्रैविध्यमेव वक्ष्यामः ॥५३॥

कि यह क्या कारण है कि जो पैना और बिजली तथा तलवार तथा अग्निके सदृश विष है और मुहूर्त्तमात्रमें भी उपेक्षित आतुरका पातन कर देता है और कुछ वाणी कहनेका भी अवकाश नहीं रहता है सो प्रत्येक दंशित लक्षण अभिहित होनेसे सर्प तीन प्रकारका होता है इसलिये तीनही प्रकारकी विधि हम कहेंगे ।।५३।।

एतद्ध्यातुरहितमसम्मोहकरञ्च अपि तत्रैव सर्वसर्पव्यञ्ज-नाञ्जनावरोधः ।।५४।।

यह विधि आतुरको हित और मोहको नहीं करनेवाली है और यही सब सर्पोंके दंशमें शाक आदि वर्जित है ।।५४।।

तत्र दर्वीकरविषेण त्वङ्नयननखदशनमूत्रपुरीषदंशकृष्णत्वं रौक्ष्यं शिरसो गौरवं संधिवेदना कटिपृष्ठग्रीवादौर्बल्यं जृंभणम् ।।५५।।

दर्वीकर सर्पोंके विषसे त्वचा नयन नख दंत मूत्र विष्ठा और डसा हुआ शरीर ये सब काले हो जाते हैं और रूखापन तथा शिर भारी हो तथा संधियोंमें पीड़ा हो और कटि पृष्ठ ग्रीवा इनमें दुर्बलता हो और जंभाई ।।५५।।

वेपथुः स्वरावघातो घुर्घूरको जडता शुल्कोद्गारः कासश्वासौ हिक्का वायोरूर्ध्वगमनं शूलोद्वेष्टनं तृष्णा लालास्रावः फेनागमनं स्रोतोऽवरोधस्तास्ताश्च वातवेदना भवन्ति ।।५६।।

और कंपना स्वरभंग घुर्घुरता जड़ता सूखी डकार खांसी श्वास हिचकी वायुका उर्ध्वगमन शूल उद्वेष्टन तृष्णा लालास्राव झाग आना स्रोतोवरोध और वे वे सब वातकी वेदना होती हैं ।।५६ ।।

मण्डलिविषेण त्वगादीनां पीतत्वं शीताभिलाषः परिधूपनं दाह-तृष्णामदमूर्च्छाज्वराः शोणितागमनमूर्ध्वमधश्च मांसानामवशातनं श्वयथुर्दंशकोपः पीतरूपदर्शनमाशुकोपस्तास्ताश्च पित्तवेदना भवन्ति ।।५७।।

और मंडलि सर्पोंके विषसे त्वचा आदि पीले होजाते हैं और शीतल वस्तुमें अभिलाषा रहती है और परिधूपन दाह तृष्णा मद मूर्च्छा ज्वर और मुख तथा गुदा द्वारा रुधिर निकलना और मांसोंका अवशातन हो सूजन हो दंशका कोप हो और पीड़ा दीखने लगजावे और शीघ्रही कोप हो जावे और वही २ पित्तकी वेदना होवें ॥५७॥

राजिमद्विषेण शुक्लत्वं त्वगादीनां शीतज्वरो रोमहर्षस्तब्धत्वम्॥५८

राजिमत अर्थात् रेखाओंवाले सर्पके विषसे त्वचा आदिकोंको सफेद करना और शीतज्वर रोमहर्ष स्तब्धता ॥५८॥

गात्राणामादंशशोफः सान्द्रकफप्रसेकश्छर्द्दिरभीक्ष्णमक्ष्णोः कण्डूः कण्ठे श्वयथुर्घुर्घुरक उच्छ्वास निरोधस्तमः प्रवेशस्तास्ताश्च कफ-वेदना भवन्ति ॥५९॥

गात्रोंमें दंशकी जगह सूजन सांद्र कफका प्रसेक छर्द्दि और वारंवार आंखोंमें खाजी हो और कंठमें सूजन तथा घुर्घुरता ऊंचा श्वासका निरोध तमःप्रवेश और वही २ कफकी वेदना हो जाती हैं ॥५९॥

पुरुषाभिदष्ट ऊर्ध्वं प्रेक्षते । अधस्तात् स्त्रिया ॥६०॥

और पुरुषसर्पका डसा हुआ पुरुष ऊपरको देखे और स्त्री सर्प से डसा हुआ पुरुष नीचेको देखे ॥६०॥

शिराश्चोत्तिष्ठंति ललाटे ॥६१॥

मस्तकमें नस खड़ी हो जावें ॥६१॥

नपुंसकाभिदष्टस्तिर्य्यक्प्रेक्षी भवति ॥६२॥

नपुंसकसर्पसे डसा हुआ पुरुष तिरछी तरफको देखे ॥६२॥

गर्भिण्या पाण्डुमुखोध्मानश्च ॥६३॥

गर्भिणीके काटे हुएका मुख धूसर हो और आध्मान हो जावे ॥६३॥

तृतीयकया शूलार्तो रुधिरं मेहयत्युपजिह्विका चास्य भवन्ति ॥६४॥

और सूतिका ब्याई हुई सर्पिणीके डसनेसे शूलकी पीड़ा हो और रुधिर मूते और उपजिह्विका रोग हो जावे ॥६४॥

ग्रासार्थिनान्नं कांक्षति ॥६५॥

और ग्रासार्थी अर्थात् भूखा सर्प डसनेसे पुरुष अन्नकी इच्छा करे।६५॥

वृद्धेन मन्दवेगश्च ॥६६॥

वृद्धसर्प डसनेसे तो मन्दवेग हो जावे ॥६६॥

बालेनाशुमृदवश्च ॥६७॥

बालकसर्पके डसनेसे आशु और मृदुवेग होवे ॥६७॥

निर्विषेण विषलिङ्गम् ॥६८॥

निर्विषसर्पके डसनेसे विषरहितके लक्षण हो जावें ॥६८॥

अन्धाहिकेनान्धत्वमित्येके ॥६९॥

अंधाहिक अर्थात् दिनके अंधेसर्पके डसनेसे अंधापना हो जावे ऐसे कितनेही वैद्य कहते हैं ॥६९॥

ग्रसनादजगरः शरीरप्राणहरो न विषात् । तत्र सद्यः प्राणहराहिदष्टः पतति शस्त्राशनिहत इव भूमौ त्रस्ताङ्गः स्वपिति ॥७०॥

और ग्रसनेसे अजगर सर्प शरीर के प्राणोंको हर लेता है और विषसे नहीं और वहां तत्काल प्राणोंको हरनेवाले सर्पसे डसा हुआ पुरुष शस्त्र और बिजलीकी तरह हत हुआ पृथ्वीमें गिर पड़ता है और त्रस्त अंगोंवाला हो जाता है और निद्रा आ जाती है ॥७०॥

तत्र दर्वीकराणां प्रथमे वेगे विषं शोणितं दूषयति तत् प्रदुष्टं कृष्णतामुपैति तेन कृष्णपिपीलिका परिसर्पणमिव चाङ्गे भवति।७१॥

सब सर्पोंके विषके सात वेग होते हैं वहां दर्वीकर सर्पों के प्रथम वेगमें विष रुधिरको दूषित करता है वह दुष्ट हुआ रक्त कालापनको प्राप्त हो जाता है उससे काली कीड़ियोंकी तरह अंगमें परिसर्पण अर्थात् चालन होता है ॥७१॥

द्वितीये मांसं दूषयति तेनात्यर्थं कृष्णता शोफो ग्रंन्थयश्चांगे भवंति ॥७२॥

और दूसरे वेग से मांसको दूषित कर देता है उससे अतिकृष्णता सूजन ग्रंथि ये अंगमें हो जाते हैं ।।७२।।

तृतीये मेदो दूषयति तेन दंशक्लेदः शिरोगौरवंस्वेदश्चक्षुर्ग्रहणञ्च।७३।

और तीसरे वेगमें मेदको दूषित कर देता है उससे दंशकी जगह पीड़ा और शिर भारी स्वेद अर्थात् पसीना चक्षुर्ग्रहण अर्थात् नेत्रका बंधा ये रोग हो जाते हैं ।।७३।।

चतुर्थे कोष्ठमनुप्रविश्य कफप्रधानान्दोषान् दूषयति
तेन तन्द्रीप्रसेकसंधिविश्लेषा भवन्ति ।।७४।।

और चौथे वेगमें विष कोष्ठमें प्रवेश होकर कफ आदिक दोषोंको दूषित कर देता है उससे तंद्रा प्रसेक संधिविश्लेष ये हो जाते हैं ।।७४।।

पंचमे अस्थीन्यनुप्रविशति प्राणमग्निञ्च दूषयति ।।
तेन पर्वभेदो हिक्कादाहश्च भवति ।।७५।।

और पांचवें वेग से अस्थियोंमें प्रवेश होकर प्राण अग्नि को दूषित कर देता है उससे संधिभेद हिचकी दाह ये होते हैं ।।७५।।

षष्ठे मज्जानमनुप्रविशति ग्रहणीञ्चात्यर्थं दूषयति तेन गात्राणां गौरवमतिसारे हृत्पीडा मूर्च्छा च भवति ।।७६।।

और छठे वेग में मज्जाके प्रति प्रवेश हो जाता है तव ग्रहणीको अति दूषित कर देता है उससे शरीर भारी और अतिसार मूर्च्छा हृदयमें पीड़ा ये हो जाते हैं ।।७६।।

सप्तमे शुक्रमनुप्रविशति व्यानञ्चातिकोपयति कफञ्च सूक्ष्मस्रोतोभ्यः प्रत्यावपति तेन श्लेष्मवर्तिप्रादुर्भावः कटिपृष्ठभङ्गश्च सर्वचेष्टाविघातो लालास्वेदयोरतिप्रवृत्तिरुच्छ्वासनिरोधश्च भवति ।।७७।।

और सातवें वेगमें शुक्रमें प्राप्त हो जाता है तव व्यानवायुको अत्यंत कोप करता है और कफको सूक्ष्म स्रोतों से झिराता है जिससे कफका

प्रादुर्भाव हो और कटी पीठभंग अर्थात् टूट जावे और सब चेष्टाओंका नाश और राल तथा पसीनोंकी प्रवृत्ति और ऊंचा श्वासका निरोध हो जाता है ॥७७॥

तत्र मंडलिनां प्रथमे वेगे विषं शोणितं दूषयति ।

तत्तत्र प्रदुष्टं शीततामुपैति तत्र परिदाहः पीतावभासता चाङ्गानां भवति ॥७८॥

वहां मंडली सर्पोंके विषके प्रथम वेगमें रुधिर दूषित हो जाता है वहां दूषित हुआ रुधिर शीतताको प्राप्त हो जाता है और परिदाह, अंगोंमें पीलापन मालूम होता है ॥७८॥

द्वितीये मांसं दूषयति तेनात्यर्थं पीतता परिदाहौ दंशे श्वयथुश्च भवति ॥७९॥

और दूसरे वेगमें मांसको दूषित कर देता है उससे अति पीतता और परिदाह होता है और दंशकी जगह सूजन होजाता है ॥७९॥

तृतीये मेदो दूषयति तेन पूर्ववच्चक्षुर्ग्रहणं तृष्णा दंशे क्लेदः स्वेदश्च ॥८०॥

तीसरे वेगमें विष मेदको दूषित कर देता है, उससे पहिले कहेकी तरह चक्षुग्रहण हो जाता है और तृषा दंशविषे पतलापन तथा स्वेद होता है ॥८०॥

चतुर्थे कोष्ठमनुप्रविश्य ज्वरमापादयति ॥८१॥

और चौथे वेग के कोष्ठमें प्रवेश होकर ज्वरको पैदा कर देता है ८१॥

पंचमे परिदाहं सर्वगात्रेषु करोति ॥८२॥

और पांचवें वेगमें सब गात्रोंमें परिदाह करता है ॥८२॥

षष्ठसप्तमयोः पूर्ववत् ॥८३॥

छठे और सातवें वेगसे पूर्ववत् जानना ॥८३॥

राजिमतां प्रथमे वेगे विषं शोणितं दूषयति तत्प्रदुष्टं पाण्डुतामुपैति तेन रोमहर्षः शुक्लावभासश्च पुरुषो भवति ॥८४॥

और राजिमंत सर्पोंके प्रथम वेगमें विष रुधिरको दुष्ट कर देता है, दूषित हुआ रक्त पीला हो जाता है, जिससे रोमहर्ष और सफेद शरीर वाला पुरुष हो जाता है ।।८४।।

द्वितीये मांसं दूषयति तेन पांडुतात्यर्थं शिरःशोफश्च भवति ।।८५।।

और दूसरे वेगमें मांसको दूषित करदेता है उससे पीलापन हो जाता है और शिरमें सूजन हो जाता है ।।८५।।

तृतीये मेदो दूषयति तेन चक्षुर्ग्रहणं दंतक्लेदः स्वेदो घ्राणाक्षिस्रावश्च भवति ।।८६।।

और तीसरे वेगमें मेदको दूषित कर देता है उससे चक्षुग्रहण दंत-क्लेद स्वेद नासिका तथा अक्षिका स्राव होता है ।।८६।।

चतुर्थे कोष्ठमनुप्रविश्य मन्यास्तम्भं शिरोगौरवं चापादयति ।।८७।।

चौथे वेगमें कोष्ठमें प्रवेश होकर मन्यास्तंभ शिरका भारीपन इनको उत्पन्न कर देता है ।।८७।।

पञ्चमे वाक्सङ्गं शीतज्वरञ्च करोति ।।८८।।

पांचवें वेग में वाक्संग शीतज्वर इनको करता है ।।८८।।

षष्ठसप्तमयोः पूर्ववदिति ।।८९।।

छठे तथा सातवें वेगमें पूर्ववत् जानना ।।८९।।

भवंति चात्र–धात्वंतरेषु याः सप्तकीलाः संपरिकीर्तिताः ।।
तास्त्वेकैका अतिक्रम्य वेगं प्रकुरुते विषम् ।।९०।।

और धातुओंमें जो सात कला कही हैं उनमें एक एकको उल्लंघन करके विष वेगको करता है ।।९०।।

येनांतरेण हि कलां कालकल्पं भिनत्ति हि ।।
समीरणेनोह्यमानं तत्तु वेगांतरं स्मृतम् ।।९१।।

और ज़िस अंतर से कला कालकल्पको भेदन कर देती है सो वायु से बढ़ा हुआ वेगांतर कहा है ।।९१।।

शूनाङ्गः प्रथमे वेगे पशुर्ध्यायति दुःखितः ॥
लालास्रावो द्वितीये तु कृष्णाङ्गः पीड्यते हृदि ॥९२॥

और दूषित हुआ पशु विषके प्रथम वेगमें सूजनको धारण कर लेता है और दूसरे वेगमें लालास्राव हो काला अंग हो हृदयसे पीड़ित हो ॥९२॥

तृतीये च शिरोदुःखं कण्ठग्रीवञ्च भज्यते ॥
चतुर्थे वेपते मूढः खादन्दंताञ्जहात्यसून् ॥९३॥

और तीसरे वेगमें शिरमें दुख तथा कंठ ग्रीवा इनका भंग हो और चौथे वेगमें मूढ़ हुआ कांपे और दांतोंको चावता हुआ प्राणोंको त्याग देवे ॥९३॥

केचिद्वेगत्रयं प्राहुरन्तश्चैतेषु तद्विदः ॥
ध्यायति प्रथमे वेगे यक्षो गुह्यत्यतः परम् ॥
द्वितीये विह्वलः प्रोक्तस्तृतीये मृत्युमृच्छति ॥९४॥

और इनके कई कई लोगों ने तीन वेग कहे हैं। प्रथम वेगमें ध्यान करता हुआ सा हो जावे और दूसरे वेगमें मोहको प्राप्त हो विह्वल हो जावे और तीसरे वेगमें मृत्युको प्राप्त हो जावे ॥९४॥

केचिदेकं विहंगेषु विषवेगमुशन्ति हि ॥
मार्ज्जारनकुलादीनां विषं नातिप्रवर्तते ॥९५॥

इति विषतंत्रचिकित्साप्रकाशे चतुर्थं तंत्रम् ॥४॥

और कोई लोग एक पक्षीके एकही विष कहते हैं और बिलाव नकुल इत्यादिका विष शरीरमें अतिप्रवृत्त नहीं होता है ॥९५॥

इति श्रीविषतंत्रचिकित्साप्रकाशे हिंदीटीकायाञ्चतुर्थं तंत्रम् ॥४॥

पञ्चमतंत्रम् ५

अथातः सर्पदष्टचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥

इसके अनंतर सर्पके डसे हुयेके चिकित्सित तंत्रको कहते हैं ॥

सर्वैरेवादितः सर्पैः शाखादष्टस्य देहिनः ॥
दंशस्योपरि बध्नीयादरिष्टाञ्चतुरंगुले ॥१॥

आदिमें सर्पोंके डसनेमें दंशके ऊपर चार अंगुलतक कुटकी बांध देवे ॥१॥

प्लोतचर्मांतवल्कानां मृदुनान्यतमेन च ॥
न गच्छति विषं देहमरिष्टैस्सुनिवारितम् ॥२॥

और प्लोतचर्म अथवा वलकल अथवा कोई कोमल वस्तु के वांधनेसे निवारित हुआ विष शरीरमें नहीं प्राप्त होता है ॥२॥

दहेद्दंशमथोत्कृत्य यत्र बंधो न जायते ॥
आचूषणच्छेददाहाः सर्वत्रैव तु पूजिताः ॥३॥

और जिस दंशके ऊपर बंधन लग सके उस दंशमें आचूषण छेदन व दाहन क्रिया करे क्योंकि यह सब जगह पूजित हैं ॥३॥

प्रतिपूर्य्य मुखं वस्तेर्हितमाचूषणं भवेत् ॥
स दग्धव्योऽथवा दंशो लोष्ठेनापि हि तत्क्षणम् ॥४॥

और वस्तिके मुखको पूरित करके आचूषण कर्म करना हित है अथवा दंशकी जगह तत्काल जलतीहुई लकड़ीसे दग्ध करनी चाहिये॥४॥

अथ मण्डलिना दष्टं न कथंचन दाहयेत् ॥
स पित्तविषबाहुल्याद्दंशो दाहाद्विसर्पति ॥५॥

और मंडली सर्पसे डसे हुएको कदाचित् दग्ध नहीं करे क्योंकि वह दंश पित्तकी वाहुल्यता होनेसे दाहसे फैल जाता है ॥५॥

अरिष्टामपि मंत्रैश्च बध्नीयान्मंत्रकोविदः ॥
सा तु रज्वादिभिर्बद्धा विषप्रतिकरी मता ॥६॥

और मंत्रको जाननेवाला पुरुष मंत्रोंसे कुटकीको बांधे और वह रज्वादिकोंसे बांधी हुई विषको दूर करनेवाली कही है ।।६।।

देवब्रह्मर्षिभिः प्रोक्ता मंत्राः सत्यतपोमयाः ।।
भवंति नान्यथा क्षिप्रं विषं हन्युस्सुदुस्तरम् ।।७।।

और देवर्षि व ब्रह्मर्षियोंके कहे हुये सत्यतपोमय मंत्र अन्यथा नहीं होते शीघ्रही दुस्तर विषको नष्ट कर देते हैं ।।७।।

विषं तेजोमयैर्मन्त्रैः सत्यब्रह्मतपोमयैः ।।
यथा निवार्य्यंते क्षिप्रं प्रयुक्तैर्न तथौषधैः ।।८।।

तेजवाले तथा सत्यब्रह्म तपोमय मंत्रोंसे जैसा शीघ्र विष निवारण होता है वैसे प्रयुक्त औषधों से नहीं ।।८।।

मंत्राणां ग्रहणं कार्य्यं स्त्रीमांसमधुवर्जिना ।।
जिताहारेण शुचिना कुशास्तरणशायिना ।।९।।

मंत्रोंका ग्रहण स्त्रीमांस मदिरासे वर्जित पुरुषको करना चाहिये और जिताहार पवित्र कुशाके विस्तरपर सोनेवाला ऐसेको मंत्र सिद्ध करना ।।९।।

गन्धमाल्योपहारैश्च बलिभिश्चापि देवताः ।।
प्रजपेन्मंत्रसिद्धयर्थं जपहोमैश्च यत्नतः ।।१०।।

और गंधमाल्यकी भेंट बलि करके देवताओंका पूजन और मंत्रकी सिद्धिके लिए यतनसे जप तथा हवन करे ।।१०।।

मंत्रास्तु विधिना प्रोक्ता हीना वा स्वरवर्णतः ।।
यस्मान्न सिद्धिमायांति तस्माद्योज्यो गदक्रमः ।।११।।

और मंत्र तो विधिसे कहे हैं स्वरवर्णके विना हीन हुए मंत्र सिद्धिको नहीं प्राप्त होते हैं अतः औषधोंको क्रमयुक्त करना चाहिये ।।११।।

समन्ततः सितं दंशाद्विध्येत्तु कुशलो भिषक् ।।
शाखाग्रे वा ललाटे वा वेध्यास्ता विस्तृते विषे ।।१२।।

चारों तरफ दंशकी नाड़ी वेध करे और चतुर वैद्य जब विष फैल जावे तब शाखाग्र भागसे तथा मस्तकसे नाड़ियोंका वेधन करे ॥१२॥

रक्ते निर्ह्रियमाणे तु कृत्स्नं निर्ह्रियते विषम् ॥
तस्माद्विस्रावयेद्रक्तं साद्धचस्य परमा क्रिया ॥१३॥

और जब रक्त निकल जाता है तब संपूर्ण विष भी दूर हो जाता है इसलिए रक्त निकलाना चाहिये यही इसकी परम क्रिया है ॥१३॥

समंतादगदैर्दंशं प्रच्छयित्वा प्रलेपयेत् ॥
चन्दनोशीरयुक्तेन वारिणा परिषेचयेत् ॥१४॥

पश्चात् चारों तरफसे औषधों द्वारा दंशको पोंछकर प्रलेप करना चाहिये और चंदन खस इनसे युक्त जलसे परिसेक करे ॥१४॥

पाययेतागदांस्तांस्तान्क्षीरक्षौद्रघृतादिभिः ॥
तदलाभे हिता वा स्यात्कृष्णा वल्मीकमृत्तिका ॥१५॥

और विषनाशक औषधोंको दूध, शहद, घृतसे युक्त करके पिलावे और वे नहीं मिलें तो बांवीकी काली मृत्तिका हित कही है ॥१५॥

कोविदारशिरीषार्ककटभीर्वापि भक्षयेत् ॥
न पिबेत्तैलकौलुत्थमद्यसौवीरकाणि च ॥१६॥

अमलतास, शिरस, आक, मालकांगनी का भक्षण करे और तैल, कुलथी, मदिरा, कांजी नहीं पीवे ॥१६॥

द्रवमन्यं तु यत्किञ्चित्पीत्वा पीत्वा तदुद्वमेत् ॥
प्रायो हि वमनेनैव सुखं निर्ह्रियते विषम् ॥१७॥

अन्य कोई थोड़ी पतली वस्तुको पी २ कर वमन कर देवे क्योंकि विशेष करके वमन करनेसे सुखसे विष निकल जाता है ॥१७॥

फणिनां विषवेगे तु प्रथमे शोणितं हरेत् ॥
द्वितीये मधुसर्पिभ्यां पाययेतागदं भिषक् ॥१८॥

और सर्पोंके प्रथम विषवेगमें रुधिर निकलाना चाहिये और दूसरे वेगमें शहद और घृत द्वारा औषधोंको पिलावे ॥१८॥

नस्यकर्माञ्जने युञ्ज्यात्तृतीये विषनाशने ॥

वांतं चतुर्थे पूर्वोक्तां यवागूमथ दापयेत् ॥१९॥

और नस्यकर्म अंजन ये तीसरे विषके वेगमें देवे और चौथे वेगमें छर्दिको देनेवाली पूर्वोक्त यवागूको पिलावे ॥१९॥

शीतोपचारं कृत्वादौ भिषक्पञ्चमषष्ठयोः ॥

दापयेच्छोधनं तीक्ष्णं यवागूञ्चापि कीर्तिताम् ॥२०॥

और वैद्यजन पांचवें तथा छठे विषके वेगमें आदिमें शीतल उपचार करके तीक्ष्ण जुलाब देवे और कही हुई यवागू देवे ॥२०॥

सप्तमे त्ववपीडेन शिरस्तीक्ष्णेन शोधयेत् ॥

तीक्ष्णमेवाञ्जनं दद्यात्तीक्ष्णशस्त्रेण मूर्ध्नि च ॥२१॥

और सातवें वेगमें तीक्ष्ण अवपीड़न करके शिरका शोधन करे और तीक्ष्ण शस्त्रसे मस्तकमें तीक्ष्णही अंजन देवे ॥२१॥

कुर्यात्काकपदं चर्म सासृग्वापि शितं क्षिपेत् ॥

पूर्वे मण्डलिनां वेगे दर्वीकरवदाचरेत् ॥२२॥

और मस्तकमें काकपदसंज्ञक वेधकर चर्म अथवा रुधिर सहित मांसको वहां डाले और पूर्वमंडलि सर्पोंके वेगमें दर्वीकर सर्पोंकी तरह इलाज करे ॥२२॥

अगदं मधुसर्पिभ्यां द्वितीये पाययेत च ॥

वामयित्वा यवागूं च पूर्वोक्तामथ दापयेत् ॥२३॥

और दूसरे वेगमें शहद और घृत सहित औषध पान करावे और वमन करवाकर पूर्वोक्त यवागूको दिलावे ॥२३॥

तृतीये शोधितं तीक्ष्णैर्यवागूं पाययेद्धिताम् ॥

चतुर्थे पञ्चमे वापि दर्वीकरवदाचरेत् ॥२४॥

तीसरे वेगमें हितको देनेवाली तीक्ष्ण यवागूको पिलावे और शोधन करवावे और चौथे तथा पांचवें वेगमें दर्वीकर सर्पोंकी तरह इलाज करे ॥२४॥

काकोल्यादिर्हितः षष्ठे पयश्च मधुरो गणः ॥
हितोऽवपीडे त्वगदः सप्तमे विषनाशनः ॥२५॥

छठे वेगमें काकोल्यादि मधुरगण और दूधको पिलाना चाहिये विषके सातवें वेगमें विषनाशक औषधोंका अवपीडन कर्म करना उचित है ॥२५॥

अथ राजिमतां वेगे प्रथमे शोणितं हरेत् ॥
अगदं मधुसर्पिर्भ्यां संयुक्तं पाययेत च ॥२६॥

परम और राजिमंतसर्पोंके प्रथम रुधिरको निकला देवे और शहद तथा घृत संयुक्त औषधोंको देवे ॥२६॥

वान्तं द्वितीये त्वगदं पाययेद्विषनाशनम् ॥
तृतीयादिषु वेगेषु विधिर्दर्वीकरो हितः ॥२७॥

दूसरे विषके वेगमें वमन कराकर विषनाशक औषधोंको पिलावे और तीसरे आदि तीन विषोंमें दर्वीकर सर्पोंका इलाज करना हित है ॥२७॥

षष्ठेऽञ्जनं तीक्ष्णतममवपीडश्च सप्तमे ॥
गर्भिणीबालवृद्धानां शिरावेधविवर्जितम् ॥२८॥

छठे वेगमें अति तीक्ष्ण अंजन देवे और सातवें वेगमें अवपीडन विधि करे और गर्भिणी बालक वृद्ध इनकी नाडी वेध नहीं करवावे ॥२८॥

विषार्तानां यथोद्दिष्टं विधानं शस्यते मृदु ॥]
रक्तावसेकाञ्जनानि नरतुल्यान्यजाविके ॥२९॥

इन विषात पुरुषोंका विधान मृदु यथोक्त करे और रक्तका अवसेक अंजन ये विधि बकरीके जो विष होवे तो मनुष्यहीके समान करे ॥२९॥

गवाश्वयोश्च द्विगुणं त्रिगुण महिषोष्ट्रयोः ॥
चतुर्गुणं तु नागानां केवलं सर्वपक्षिणाम् ॥३०॥

गौ अश्व इनमें तिगुना देवे और महिषी ऊंट इनको ये विधि तिगुनी करे और सब अन्यपक्षी हस्ती इनके चौनुगुनी विधि करे ॥३०॥

परिसेकान्प्रदेहांश्च सुशीतानविचारयेत् ॥
माषकं त्वंजनस्येष्टं द्विगुणं नस्यतो हितम् ॥३१॥

परिषेक लेप ये शीतल करने चाहिये और अंजनमें इनको मासा प्रमाण अधिक देवे और नस्य दुगुनी देवे ॥३१॥

पाने चतुर्गुणं पथ्यं वमनेष्टगुणं पुनः ॥
देशप्रकृतिसात्म्यर्तुविषवेगबलाबलम् ॥३२॥

और पीनेमें चौगुना देना हित है वमनमें आठगुनी औषध देनी हित हैं और देश, प्रकृति, स्वभाव इनको ॥३२॥

प्रधार्य्य निपुणो बुद्ध्या ततः कर्म समाचरेत् ॥
वेगानुपूर्वमित्येतत्कर्म्मोक्तं विषनाशनम् ॥३३॥

बुद्धि से जानकर फिर इलाज करे ऐसे ये वेगोंके अनुसार विषनाशन कर्म कहा है ॥३३॥

कर्म्मावस्थाविशेषेण विषयोरुभयोः शृणु ॥
विवर्णे कठिने शूने सरुजेऽङ्गे विषार्दिते ॥३४॥

और अवस्थाविशेष से दोनों विषोंके कर्मको सुनो जो विवर्ण हो करडा और पीड़ासहित सूजन हो और विषसे पीड़ित हो ॥३४॥

तूर्णं विस्रावणं कार्यमुक्तेन विधिना ततः ॥
क्षुधार्तमनिलप्रायं तद्विषार्तं समाहितः ॥३५॥

तब शीघ्रही उक्त विधि से विस्रावण कर्म करे, क्षुधासे पीड़ित और बहुत वातवाले विषसे पीड़ित समाहित पुरुषको ॥३५॥

पाययेद्दधि तक्रं वा सर्पिः क्षौद्रं तथा रसम् ॥
तृड्दाहघर्मसंमोहे पैत्तं पैत्ते विषातुरम् ॥३६॥

दही तक्र घृत शहद रस इनका पान करावे और तृषा दाहसे पीड़ित हो मोह हो पित्तका कोप हो तो पित्तका विष जानना ॥३६॥

शीतैः संवाहनस्नानप्रदेहैः समुपाचरेत् ॥
शीते शीतप्रसेकार्तं श्लैष्मिकं कफकृद्विषम् ॥३७॥

तब शीतल मालिश स्नान लेप ये करने चाहिये और शीतलतामें शीतप्रसेकसे पीड़ित पुरुषके कफकी वृद्धि होती है ॥३७॥

वामयेद्वमनैस्तीक्ष्णैस्तथा मूर्च्छागदान्वितम् ॥
कोष्ठदाहरुजाध्मानमूत्रसङ्गरुगन्वितम् ॥३८॥

और मूर्च्छासे पुरुषको तीक्ष्ण औषधों द्वारा वमन कराना चाहिये और कोष्ठ, दाह, पीड़ा, आध्मान, मूत्रसंग इन पीड़ाओंसे युक्त पुरुषको ॥३८॥

विरेचयेच्छकृद्वायुसङ्गपित्तातुरं नरम् ॥
शूनाक्षिकूटं निद्रार्तं विवर्णाविललोचनम् ॥३९॥

और वायुसंगवाले तथा पित्तातुर पुरुषको जुलाब दिलवावे और आंखमें सूजन हो तथा अक्षिकूटरोग निद्रार्त विवर्ण और नेत्र प्रगट हो उखड़ जावें ॥३९॥

विवर्णञ्चापि पश्यन्तमञ्जनैः समुपाचरेत् ॥
शिरोरुग्गौरवालस्यहनुस्तम्भगलग्रहे ॥४०॥

और विवर्ण हो जाय तब अंजनों द्वारा इलाज करे और शिरोरोग, शिर भारी हो जाय, आलस, हनुस्तंभ, गलग्रह ॥४०॥

शिरो विरेचयेत्क्षिप्रं मन्यास्तम्भे च दारुणे ॥
नष्टसंज्ञं विवृताक्षं भग्नग्रीवं विरेचनैः ॥४१॥

और दारुण मन्यास्तंभमें शीघ्रही शिरका जुलाब करावे और नष्टसंज्ञ अर्थात् अचेत हो जाय विवृताक्ष भग्नग्रीव इनका इलाज जुलाब देवे ॥४१॥

चूर्णैः प्रधमनैस्तीक्ष्णैर्विषार्तं समुपाचरेत् ॥
ताडयेच्च शिराः क्षिप्रं तस्य शाखा ललाटजाः ॥४२॥

और प्रधमन तीक्ष्ण चूर्णोंद्वारा विषसे पीड़ित पुरुषका इलाज करे और शीघ्रही उसके मस्तककी शिरावेध करावे ॥४२॥

तास्वप्रसिच्यमानासु मूर्ध्नि शस्त्रेण शस्त्रवित् ।।
कुर्य्यात्काकपदाकारं व्रणमेवं स्रवंति ताः ।।४३।।

और शस्त्रविद्याको जाननेवाला पुरुष मस्तकमें काकके पंजेके समान आकार करे तो उनके द्वारा नसोंमांहके रुधिरको गिरावे ।।४३।।

सरक्तं चर्म मांसं वा निक्षिपेच्चास्य मूर्ध्नि च ।।
चर्मवृक्षकषायं वा चूर्णं वा कुशलो भिषक् ।।४४।।

अथवा इसके मस्तकमें रक्तसहित चर्म मांसको रखें अथवा भोजपत्र वृक्षका काढ़ा अथवा उक्त चूर्णको चतुर वैद्य वहां निक्षिप्त करे ।।४।।

वादयेच्चागदैर्लिप्ता दुन्दुभीस्तस्य पार्श्वयोः ।।
लब्धसंज्ञं पुनश्चैनमूर्ध्वञ्चाधश्च शोधयेत् ।।४५।।

और औषधोंका लेप उसके ऊपर करके उसके दोनों तरफ नक्कारों को बजवावे और जब इसको चेत हो जावे तब जुलाब और वमन करवावे ।।४५।।

निःशेषं निर्हरेच्चैव विषं परमदुर्जयम् ।।
अल्पमप्यवशिष्टं हि भूयो वेगाय कल्प्यते ।।४६।।

और परमदुर्जय बाकी रहे विषको भी निकाल देवे क्योंकि अल्प भी जो विष बाकी रहजावे तो वह फिर वेग करता है ।।४६।।

कुर्य्याद्वा सादवैवर्ण्ये ज्वरकासशिरोरुजः ।।
शोफशोषप्रतिश्यायतिमिरारुचिपीनसान् ।।४७।।

अथवा शिथिलपना विवर्णताको करे ज्वर खांसी शिररोगको करे और सूजना शोष प्रतिश्याय तिमिर अरुचि पीनस कर ।।४७।।

तेषु चापि यथादोषं प्रतिकर्म्म प्रयोजयेत् ।।
विषार्त्तोपद्रवांश्चापि यथास्वं समुपाचरेत् ।।४८।।

सो उनमें भी दोषके अनुसार कर्म करना चाहिये विषार्त पुरुषके उपद्रवोंके सदृश इलाज करे ।।४८।।

अथारिष्टां विमुच्याशु प्रच्छयित्वांकितं तथा ॥
लिह्यात्तत्र विषं स्कन्नं भूयो वेगाय कल्पते ॥४९॥

अथवा अरिष्टाको खोलकर उस खंडको पोंछदेवे और कछूक रहे विष लेप कर देवे क्योंकि नहीं तो फिर वेग कर देवे ॥४९॥

एवं क्रियाक्रमैर्मन्त्रैरौषधीभिश्च यत्नतः ॥
विषे हृतगुणे देहाद्यदा दोषः प्रकुप्यति ॥५०॥

ऐसे क्रियाओंके क्रम मंत्र औषधि द्वारा यत्नसे हृतगुणविष होनेसे जब दोष कोपको प्राप्त हो जावे तव ॥५०॥

तदा पवनमुद्वृत्तं स्नेहाद्यैः समुपाचरेत् ॥
तैलमस्त्यकुलत्थाम्लवर्जैर्मरुत्तनाशनैः ॥५१॥

उद्धतवायुको स्नेहादिकोंसे उपाचरण करे और तेल मच्छी कुलथी खट्टासे रहित पदार्थ वातनाशक औषध द्वारा इलाज करे ॥५१॥

पित्तज्वरहरैः पित्तं कषायैः स्नेहवस्तिभिः ॥
कफमारग्वधाद्येन सक्षौद्रेण गणेन तु ॥५२॥

और पित्तज्वरको हरनेवाले काढों से और स्नेह वस्ति से पित्तका इलाज करे और कफका इलाज शहदयुक्त आरग्वधादिगण औषधोंसे करे ॥५२॥

श्लेष्मघ्नैरगदैश्चापि तिक्तं रूक्षैश्च भोजनैः ॥
वृक्षप्रपातविषमपतितं मृगमम्भसि ॥
उद्वृत्तं वा मृतं सद्यश्चिकित्सेन्नष्टसञ्ज्ञवत् ॥५३॥

और कफनाशक औषध कडुवे तथा रूक्ष भोजनोंसे इलाज करे। और वृक्षसे गिरा हुआ तथा विषमपतित और जलमें डूबा हुआ

और भयसे मृत इन सबकी चिकित्सा नष्टसंज्ञकी तरह जल्दी करनी चाहिये ।।५३।।

गाढं बद्धेऽरिष्टयाप्रच्छितेऽपि तीक्ष्णैर्लेपैस्त द्विधैर्वा विशेषैः ।।
शूने गात्रे क्लिन्नमत्यर्थपूति ज्ञेयं मांसं तद्विषात्पूतिकष्टम् ।।५४।।

और अरिष्टा जो यदि करडी बंध जावे अथवा तीक्ष्ण प्रलेपों से अथवा विशेष लेपों से सूजन होनेसे अति गीला शरीर हो जाता है तब विषसे उपजा हुआ पूतिमांस रोग जानना ।।५४।।

सद्यो विद्धं निस्रवेत्कृष्णरक्तं पाकं यावद्दह्यते चाप्यभीक्ष्णम् ।।
कृष्णीभूतं क्लिन्नमत्यर्थपूति शीर्णं मांसं जात्यजस्रं क्षतश्च ।।५५।।

और तत्काल बांधा हुआ जो काला रक्त निकले और पक जावे और बारंबार दग्ध होता जावे और काला हुआ रक्त अति गीला हो जावे और मांस क्षत होकर बिखर जाता है ।।५५।।

तृष्णा मूर्च्छा भ्रान्तिदाहौ ज्वरश्च यस्य स्युस्तं विद्धविद्धं व्यवस्येत् ।।
पूर्वोद्दिष्टं लक्षणं सर्वमेतज्जुष्टं यस्यालंविशेषव्रणाः स्युः ।।५६।।

और तृषा, मूर्च्छा, भ्रांति, दाह, ज्वर ये जिसके होवें वह दिग्धविद्ध जानना और पहिले कहे हुये सब लक्षण होवें और अति विशेष करके व्रण हो जाते हैं ।।५६।।

लूता दष्टा दिग्धविद्धा विषैर्वा जुष्टा येस्युर्ये व्रणाः पूतिमांसाः ।।
तेषां युक्त्या पूतिमांसान्यपोह्य वार्योकोभिः शोणितं चापहृत्य ।।५७।।

और मकड़ीसे डसे हुये और दिग्ध विद्ध और विषोंसे सेवित ऐसे जो व्रण हों और पूतिमांस होवे तो उनका युक्ति से दूषित मांसको निकालकर फिर जलकी धारा से रुधिरको निकाले ।।५७।।

हत्वा दोषान्क्षिप्रमूर्ध्वं त्वधश्च सम्यक्सिञ्चेत्क्षीरिणां त्वक्कषायैः ॥
अंतर्वस्त्रं दापयेच्च प्रदेहाञ्शीतैर्द्रव्यैराज्ययुक्तैर्विषघ्नैः ॥५८॥

और दोषोंको हनन कर पश्चात् शीघ्रही वमन करावे और जुलाब दिलवावे और दूधवाले वृक्षोंके क.ढोंसे अच्छी प्रकारसे सेक करे और शीतल द्रव्य और विषनाशक औषधों से लेप करे और उसके बीचमें वस्त्र लगा देवे ॥५८॥

भिन्नेनास्थ्ना दुष्टजातेन कार्यः पूर्वो मार्गः पैत्तिके वा विषे च ॥५९॥

और अस्थिभिन्न हो जावे अथवा दुष्ट हो जावे तो विषमें पहले कहा पैत्तिकका मार्ग करना चाहिये ॥५९॥

त्रिवृद्विशल्ये मधुकं हरिद्रे रक्ता नरेन्द्रो लवणश्च वर्गः ॥
कटुत्रिकं चैव विचूर्णितानि शृङ्गे निदध्यान्मधुसंयुतानि ॥६०॥

और निशोत विशल्या मुलहटी दोनों हलदी, मजीठ, अमलताश, सब नमक, सूंठ, मिरच, पीपल, इनके चूर्णको शहदसे संयुक्त कर सींगमें डाल धरे ॥६०॥

एषोऽगदो हन्ति विषं प्रयुक्तः पानाञ्जनाभ्यञ्जननस्य योगैः ॥
अवार्यवीर्य्यो विषवेगहन्ता महागदो नाम महाप्रभावः ॥६१॥

यह औषध पान अंजन म लिस नस्यमें वरतनेसे विषको नाश करती है। इस औषधका बल किसी प्रकार निवारण नहीं होता और यह विषके वेगोंका न.शक है और यह महाप्रभावानामवाला औषध है ॥६१॥

विडङ्गपाठात्रिफलाजमोदाहिंगूनि चक्रत्रिकटूनि चैव ॥
सर्वश्च वर्गो लवणश्च सूक्ष्मः सचित्रकः क्षौद्रयुतो निधेयः ॥

शृङ्गे गवां शृङ्गमयेन चैव प्रच्छादितः पक्षमुपेक्षितश्च ॥६२॥६३॥

वायविडंग पाठा त्रिफला अजमोद हींग पुआड सूंठ मिरच पीपल और सब नमक कलोंजी चीता इनको पीस शहदमें मिलाय सींगमें रख देवे और गौके सींगमें ढक देवे फिर १५ दिनतक धरा रक्खे ॥६२॥६३॥

एषोऽगदः स्थावरजङ्गमानां जेता विषाणामजितो हि नाम्ना ॥
प्रपौण्डरीकं सुरदारुमुस्ता कालानुसार्या कटुरोहिणी च ॥६४॥

यह औषध स्थावर और जंगम विषोंके जीतनेवाला और अजित नामवाला है प्रपौंडा देवदार नागरमोथा तगर कुटकी ॥६४॥

स्थौणेयकं ध्यामकपद्मकानि पुन्नागतालीशसुवर्चिका च ॥
कुटन्नटैलासितसिन्धुवाराः शैलेयकुष्ठौ तगरं प्रियंगु ॥६५॥

गठौना रोहिषतृण पद्माक पुआड तालीस साजी क्षुद्रमोथा इलायची सफेद संभालू शिलाजित कूठ तगर मालकांगनी ॥६५॥

रोध्रं जलं काञ्चनगैरिकञ्च सन्नागधञ्चन्दनसैन्धवञ्च ॥
सूक्ष्माणि चूर्णानि समानि कृत्वा शृङ्गे निदध्यान्मधुसंयुतानि ॥६६॥

लोध, भद्रमुस्ता, सोना, गुरू, पीपल, चंदन, सैंधानमक इन सबको समान भाग ले सूक्ष्म चूर्ण बना शहद मिला सींगमें रख दे ॥६६॥

एषोऽगदस्तार्क्ष्य इति प्रदिष्टो विषं निहन्यादपि तक्षकस्य ॥
मांसीहरेणुत्रिफलामुरङ्गीरक्तालतायाष्टकपद्मका ॥६७॥

यह औषध तार्क्ष्य नामवाली है यह तक्षकसर्पके भी विषको नाश देता है। जटामांसी हरेणु त्रिफला मुरंगी मजीठका अष्टक पद्माक ॥६७॥

विडङ्गतालीशसुगन्धिकैलात्वक्कुष्ठपत्राणि सचन्दनानि ॥
भार्ङ्गी पटोलं किणिही सपाठा मृगादनी कर्कटिका पुरञ्च ॥६८॥

वायविडंग, तालीशपत्र, भद्रमोथा, इलायची, दालचीनी, कूट,

तेजपात, चंदन, भारंगी, परवल, सफेदकिन्ही, पाठा, गडूभा, ककोड़ी, गूगल ॥६८॥

पालिन्द्यशोकौ क्रमुकं तुलस्याः प्रसूनमारुष्करजञ्च पुष्पम् ॥
चूर्णान्यथैषां निहितानि शृङ्गे न्यसेत्तथैतानि समाक्षिकाणि ॥६९॥

काला निशोत, अशोक, सुपारी, तुलसीकी मंजरी, भिलावाके पुष्प इन सबका चूर्ण बनाय शहद मिलावे और सींगमें रख दे ॥६९॥

वराहगोधाशिखिशल्लकानां मार्जारजं पार्षतनाकुले च ॥
यस्यागदोयं सुकृतो गृहे स्यान्नाम्नर्षभोनाम नरर्षभस्य ॥७०॥

और शूकर गोह मयूर शेह बिलाव पृषतसंज्ञक हिरण नकुल इन जीवोंका पित्ता इस औषधमें मिला दे जिस उत्तम पुरुषके घरमें यह ऋषभ नामवाला औषध रहता है ॥७०॥

न तत्र सर्पाः कुत एव कीटास्त्यजन्ति वीर्याणि विषाणि चैव ॥
एतेन भेर्य्यः पटहाश्च दिग्धा नानद्यमाना विषमाशु हन्युः ॥७१॥

वहां सर्प कीटक ये अपने बल और विषको नहिं छोड़ सकते हैं और इस औषध से लिपी हुई भेरी ढोल और अनेक प्रकारके बाजे जो बजने लगें तो शीघ्रही विषका नाश हो जाता है ॥७१॥

दिग्धा पताकाश्च निरीक्ष्य सद्यो विषाभिभूता ह्यविषा भवन्ति ॥
लाक्षा हरेणुर्नलदं प्रियंगु शिग्रुद्वयं यष्टिकपृथ्विकाश्च ॥७२॥

और इससे लिपी हुई पताका देखनेसे विषमें ग्रस्त हुये पुरुष विषरहित हो जाते हैं और लाख, हरेणु, नड, मालकांगनी, दोनों सहींजने, मुलहटी, कलौंजी, हलदी ॥७२॥

चूर्णीकृतोयं रजनीविमिश्रो वर्गो विधेयो मधुसर्पिषावतः ॥
शृंगे गवां पूर्ववदापिधानस्ततः प्रयोज्योऽञ्जननस्यपानैः ॥७३॥

इन सबको मिला चूर्ण बनाय फिर शहद और घृत मिलाय गौके सींगमें रख दे और सींगहीसे ढककर रखे पश्चात् यह औषध अंजन नस्य पानमें देनी चाहिये ।।७३।।

सञ्जीवनो नाम गतासुकल्पमेषोऽगदो जीवयतीह मर्त्यम् ।।
श्लेष्मांतको कट्फलमातुलुङ्गः श्वेतागिरिह्वा किणिही सिता च ।।७४।।

यह संजीवन नामवाला औषध है यह विषसे मरे हुए पुरुषको भी जिला देता है । ल्हेंसवा कायफल विजौरा सफेद रिंगणी गिरिह्वा किन्ही सफेद चौलाई ।।७४।।

सतण्डुलीयोऽगद एष मुख्यो विषेषु दर्वीकरराजिलानाम् ।।
द्राक्षा सुगंधा नगमृत्तिका च पिष्टा समङ्गा समभारयुक्ता ।।७५।।

इन सब औषधोंका यह मुख्य प्रयोग है यह दर्वीकर तथा राजिल सर्पोंके विषमें देना चाहिये और दाख वांझककोड़ी नगमृत्तिका इन सब औषधोंको पीस इनके समान भाग मंजीठ मिलावे ।।७५।।

देयो द्विभागः तुलसीच्छदस्य कपित्थबिल्वादपि दाडिमाच्च ।।
तथार्द्धभागोऽसितसिन्धुवारादंकोठमूलादपि गौरिकाच्च ।।७६।।

और दो भाग तुलसी के पत्ते और कैथ बेलफल अनारदाना ये आधा भाग मिलावे और सफेद संभालु अंकोटकी जड़ गेरु ये आधा भाग मिलावे इस प्रकार बनाया हुआ शहद युक्त ।।७६।।

एषोऽगदः क्षौद्रयुतो निहन्ति विशेषतो मण्डलिनां विषाणि ।।
वंशत्वगार्द्रमिलकं कपित्थं कटुत्रिकं हैमवती सकुष्ठा ।।७७।।

यह औषध विशेषकर मंडलि सर्पोंके विषको नष्ट करता है और वंशलोचन, अदरक, आंवला, कैथ, सूंठ, मिरच, पीपल, चोक, कूट ।।७७।।

करञ्जबीजं तगरं शिरीषपुष्पञ्च गोपित्तयुतं निहन्ति ॥
विषाणि लूतोन्दुरुपन्नगानां कैटञ्च लेपाञ्जननस्ययोगैः ॥७८॥

करंजुआके बीज तगर शिरसका पुष्प गौका पित्ता इन सबको मिलावे यह औषध मकड़ी मूषा सर्प के विषको मालिश लेप अंजन नस्य में वरतनेसे नष्ट कर देता है ॥७८॥

पुरीषमूत्रानिलगर्भसङ्गान्निहन्ति वर्त्यञ्जननाभिलेपैः ॥
कांचार्म्मकोत्थान्पटलांश्च घोरान्पुष्पञ्च हन्त्यञ्जननस्ययोगैः ॥७९॥

और वत्ती वनाय अंजन और नाभीपर लेप करनेसे विष्ठा मूत्र अधोवात गर्भके बंधको नष्ट देता है और कांचरोग अर्म्मकोत्थ घोरपटल फूलको अंजन तथा नस्य योग करनेसे यह औषध नष्ट करदेता है॥७९॥

समूलपुष्पांकुरवल्कबीजात्ततः शिरीषात्त्रिकटुप्रगाढः ॥
सलावणः क्षौद्रयुतोऽथ पीतो विशेषतः कीटविषं निहन्ति ॥८०॥

और शिरसकी जड़ पुष्प अंकुर छाल बीज इन सब समेत ले सूंठ मिरच पीपल मिलाय क्वाथ वनावे पीछे नमक तथा शहदके संग पिया हुआ यह विशेषकर कीड़ाके विषको नष्ट करता है ॥८०॥

कुष्ठं त्रिकटुकं दार्वी मधूकलवणद्वयम् ॥
मालती नागपुष्पञ्च सर्वाणि मधुराणि च ॥८१॥

कूट त्रिकटु अर्थात् सूंठ, मिरच, पीपल, दारुहलदी, महुआ, दोनों नमक, मालती, नागकेशर संपूर्ण मधुरगण ॥८१॥

कपित्थरसपिष्टोयं शर्कराक्षौद्रसंयुतः ॥
विषं हन्त्यगदः सर्वं मूषिकाणां विशेषतः ॥८२॥

इनको कैथके रसके संग पीस फिर खांड और शहद मिलावे यह औषध विशेषकर मूसेके विपको नष्ट करता है ।।८२।।

सोमराजीफलं पुष्पं कटभीसिन्धुवारकः ।।
चारको वरुणः कुष्ठं सर्वगंधा ससातला ।।८३।।

और बावची, मदनपुष्प, कटभी, संभालू, गठौना, वरुणा, कूट, सर्वगंधा, सातला ।।८३।।

पुनर्नवा शिरीषस्य पुष्पमारग्वधार्कजम् ।।
श्यामाम्बष्ठाविडङ्गानि तथाम्लाः सप्तकानि च ।।८४।।

शांठी, शिरसका पुष्प, अमलतास तथा आकका पुष्प निशोत पाठा वायविडंग अमली सातला ।।८४।।

भूमीकुरबकश्चैव गण एकसरः स्मृतः ।।
एकशो द्विस्त्रिशो वापि प्रयोक्तव्यो विषापहः ।। ८५।।

इति विषतंत्रचिकित्साप्रकाशे पञ्चमं तंत्रम् ।।५।।

जमीकंद इन सब औषधोंको एकसागण कहाता है, इन औषधों माहसे एक औषध अथवा दो तथा तीन औषध दी हुई विषनाशक हैं ।८५।।

।।इति विषतंत्रचिकित्साप्रकाशे हिन्दीटीकायां पञ्चमं तंत्रम् ।।५।।

षष्ठतंत्रम् ।।६।।

अथातो मूषिकाकल्पं व्याख्यास्यामः ।।

इसके अनंतर मूषिकाकल्पनामक तंत्रको कहते हैं ।।

पूर्वमुक्ताः शुक्रविषा मूषिका ये समासतः ।।
नामलक्षणभैषज्यैरष्टादश निबोध तान् ।।१।।

पहिले शुक्रविषवाली मूषिका कही हैं उनको नाम लक्षण भैषज्य द्वारा १८ भेदवाली जानो ।।१।।

लालनः पुत्रकः कृष्णो हंसिरश्चिक्किरस्तथा ।।
छच्छून्दरोऽलसश्चैव कषायदशनोऽपि च ।।२।।

जैसे लालन, पुत्रक, कृष्ण, हंसिर, चिक्कर, छुछुंदर, अलस, कषाय-दशन ।।२।।

कुलिङ्गश्चाजितश्चैव चपलः कपिलस्तथा ।।
कोकिलोरुणसङ्गश्च महाकृष्णस्तथोन्दुरः ।।३।।

कुलिंग, अजित, चपल, कपिल, कोकिल, अरुणसंग, महाकृष्ण, उंदुर ।।३।।

श्वेतेन महता सार्द्धं कपिलेनाखुना तथा ।।
मूषिकश्च कपोताभस्तथैवाष्टादश स्मृता ।।४।।

और बहुत सफेद वर्णसे मिली हुई कपिलवर्णवाली मूसी तथा कपो-ताभ अर्थात् कपोतसरीखा वर्णवाला मूसाके १८ अठारह भेद हैं ।।४।।

शुक्रं पतति यत्रैषां शुक्रघृष्टैः स्पृशन्ति वा ।।
नखदन्तादि भिस्तस्मिन्गात्रे रक्तं प्रदुष्यति ।।५।।

जहां इनका शुक्र गिरता है अथवा शुक्रमें घिसेहुए नख दंत आदिकों से स्पर्श करते हैं उसी जगहके शरीरका रक्त दूषित हो जाता है ॥५॥

जायन्ते ग्रंथयः शोकाः कर्णिका मण्डलानि च ॥
पिडकोपचयश्चोग्रा विसर्पाः किट्टिभानि च ॥६॥

सूजन कर्णिका मंडल ये हो जाते हैं, और पीडिकाओंकी वृद्धि हो जाती है, विसर्प तथा किटिभरोग हो जाता है ॥६॥

पर्वभेदो रुजस्तीव्रा ज्वरो मूर्च्छा च दारुणा ॥
दौर्बल्यमरुचिः श्वासो वेपथुर्लोमहर्षणम् ॥७॥

संधि टूटना और तीव्र पीड़ा होती है। ज्वर दारुण मूर्च्छा दुर्बलता अरुचि श्वास कंपना रोमहर्षण ये लक्षण हो जाते हैं ॥७॥

दष्टरूपं समासोक्तमेतच्च व्यासतः शृणु ॥
लालास्रावो लालनेन हिक्काछर्दिश्च जायते ॥८॥

इनके डसनेके रूपको विस्तार से सुनो लालन मूसाके डसनेसे राल गिरना और हिक्का तथा छर्दि हो जाती है ॥८।

तण्डुलीयककल्कन्तु लिह्यात्तत्र समाक्षिकम् ॥
पुत्रकेणाङ्गसादश्च पाण्डुवर्णश्च जायते ॥९॥

चौलाईका कल्क बना उसमें शहद मिलाकर चाटना चाहिये और पुत्रक मूषाके डसनेसे अंगसाद और पीला वर्ण हो जाता है ॥९॥

चीयते ग्रंथिभिश्चांगमाखुशावकसन्निभैः ॥
शिरीषेंगुदकल्कं तु पिबेत्किशुकभस्मना ॥१०॥

और मूषाके छोटे २ बच्चोंके सदृश वर्णवाली ग्रंथि हो जाती हैं, वहां शिरस हिंगणवेतके कल्कको टेशूकी भस्मके संग पीवे ॥१०॥

हंसिरेणान्नविद्वेषो जृम्भा लोम्नाञ्च हर्षणम् ॥
पिबेदारग्वधादिन्तु सुवान्तस्तत्र मानवः ॥११॥

हंसिर मूसाके डसनेसे अन्नमें इच्छा नहीं रहे जंभाई रोमहर्षण ये होवें वहां मनुष्यको पहले अच्छी तरह वमन दिलाकर फिर आरग्वधादि क्वाथ पिलाना चाहिये ॥११॥

चिक्किरेण शिरोदुःखं शोफो हिक्का वमी तथा ॥
जालिनी मदनांकोटकषायैर्वामयेत्तु तम् ॥१२॥

और चिक्किर मूसाके डसनेसे शिरमें दुःख सूजन हिचकी छर्दि ये होते हैं वहां कडुई तोरी मैनफल अंकोट का काढ़ा पिलाकर वमन कराना चाहिये ॥१२॥

छच्छून्दरेण विड्भङ्गो ग्रीवास्तम्भो विजृम्भणम् ॥
पवनालर्षभक्षारं बृहत्याश्चात्र दापयेत् ॥१३॥

छुछूंदर मूसाके डसनेसे विडभंग, ग्रीवास्तंभ, जंभाई आना, ये रोग उपजते हैं तथा जवाखार ऋषभकका खार कटेहलीका खार ये देने चाहिये ॥१३॥

ग्रीवास्तम्भोऽलसेनोर्ध्ववायुर्दंशे रुजा ज्वरः ॥
महागदं ससर्पिष्कं लिह्यात्तत्र समाक्षिकम् ॥१४॥

अलस मूसाके डसनेसे ग्रीवास्तंभ और ऊर्ध्ववायु और दंशविषे

पीड़ा ज्वर ये उपजते हैं वहां कूटको घृत और शहदके संग मिलाय चाटना चाहिये ॥१४॥

निद्रा कषायदन्तेन हृच्छोषः कार्श्यमेव च ॥
क्षौद्रोपेताः शिरीषस्य लिह्यात्सारफलं त्वचः ॥१५॥

और कषायदंत मूसाके डसनेसे निद्रा आवे हृदयमें शोष और माडापन होवे वहां शहदके संग शिरसकी छाल और सारफल अर्थात् निंबूभेदकी छालको शहदके संग चाटे ॥१५॥

कुलिङ्गेन रुजः शोफो रागश्च दंशमण्डले ॥
सहे ससिन्धुवारे च लिह्यात्तत्र समाक्षिके ॥१६॥

और कुलिंग मूसाके डसनेसे पीड़ा हो सूजन हो और दंशमंडलके विषे खाज हो वहां शेवती लघुरानशेवती संभालूको पीस शहदमें मिलाय चाटना चाहिये ॥१६॥

अजितेन वमी मूर्च्छा हृद्ग्रहः कृष्णनेत्रता ॥
तत्र स्नुहीक्षीरपिष्टां पालिन्दीं मधुना लिहेत् ॥१७॥

और अजित मूसाके डसनेसे वमन मूर्च्छा हृदयका ग्रहण काले नेत्र ये हो जाते हैं वहां थोहरके दूधमें पीसी हुई पालिंदीको शहदके संग मिलाय चाटना चाहिये ॥१७॥

चपलेन भवेच्छर्दिर्मूर्च्छा च सह तृष्णया ॥
स भद्रकाष्ठां सजटां क्षौद्रेण त्रिफलां लिहेत् ॥१८॥

और चपल मूसाके डसनेसे छर्दी मूर्च्छा और तृषा ये होते हैं वहां देवदार जटामांसी और त्रिफलाको शहदके संग चाटे ॥१८॥

कपिलेन व्रणे शोथो ज्वरो ग्रंथ्युद्गमस्तथा ।।
क्षौद्रेण लिह्यात्त्रिफलां श्वेतां चापि पुनर्नवाम् ।।१९।।

और कपिलसंज्ञकमूसाके डसनेसे व्रणपर सूजन उपजे ज्वर हो जावे ग्रंथि हो जावे वहां शहदके संग त्रिफला और सांठीको चाटे ।।१९।।

ग्रंथयः कोकिलेनोग्रा ज्वरो दाहश्च दारुणः ।।
वर्षाभूर्नीलिनीक्वाथसिद्धं तत्र घृतं पिबेत् ।।२०।।

कोकिलमूषाके डसनेसे उग्रग्रंथि हो जावे, ज्वर हो, दारुण दाह हो वहां सांठी नीलिका का क्वाथ और घृतको पीवे ।।२०।।

अरुणेनानिलः क्रुद्धो वातजान्कुरुते गदान् ।।
महाकृष्णेन पित्तञ्च श्वेतेन कफ एव च ।।२१।।

अरुणमूषकके डसनेसे वायु क्रोधयुक्त हुआ वातज रोगोंको उपजाता है और महाकृष्ण मूषकके डसनेसे पित्त कोपित हुआ पित्तज और सफेद मूषकके डसनेसे क्रोधित हुआ कफ कफज रोगोंको उत्पन्न करता है ।।२१।।

महता कपिलेनास्रक्कपोतेन चतुष्टयम् ।।
भवन्ति चैषां दंशेषु ग्रंथिमण्डलकर्णिकाः ।।२२।।

महान् कपिलवर्णवाले मूषकसे रुधिरकोप होता है और कपोताभमूषकके डसनेसे ये चारों कोपको प्राप्त होते हैं और इनके डसनेकी जगह ग्रंथिमंडल कर्णिका ये उपजती हैं ।।२२।।

पीडकोपचयाश्चोग्राः शोफश्च भृशदारुणः ।।
दधिक्षीरघृतप्रस्थास्त्रयः प्रत्येकशो मताः ।।२३।।

और उग्रपीडिकाओंका समूह दारुण सूजन वहां दहीं दूध घृत को अलग २ तीन-तीन प्रस्थ प्रमाण लेवे ।।२३।।

करञ्जारग्वधव्योषबृहत्यंशुमतीस्थिराः ।।
निष्क्वाथ्य चैषां क्वाथस्य चतुर्थांशः पुनर्भवेत् ।।२४।।

करंजुआ, अमलतास, सूंठ, मिरच, पीपल, कटैहली, सालवण, मूषापर्णी इनका क्वाथ बनाय पीछे चतुर्थांश बाकी रहे तब ।।२४।।

त्रिवृत्तिलामृताचक्रसर्पगन्धा समृत्तिका ।।
कपित्थदाडिमत्वक्च सुपिष्टानि तु दापयेत् ।।२५।।

निशोत, तिल, गिलोय, तगर, नागफन, सौराष्ट्री, माटी, कैथा, अनारकी छालको बारीक पीस उसमें डाले ।।२५।।

तत्सर्वमेकतः कृत्वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत ।।
पंचानामरुणादीनां विषमेतव्द्यपोहति ।।२६।।

पीछे उन सबको मिलाकर शनैः शनैः मंद २ अग्निसे पकावे यह औषध उन पांच अरुण आदिक मूषकोंके विषको दूर करता है ।।२६।।

काकादनीकाकमाचीस्वरसेष्वथ वा कृतम् ।।
शिराश्च स्रावयेत्प्राज्ञः कुर्यात्संशोधनानि च ।।२७।।

अथवा मालकांगनी मकोहके स्वरसमें सिद्ध किया हुआ यह उनके

विषको नष्ट करता है। वहां वैद्यको सिरास्राव और संशोधनकर्म कराना चाहिये ॥२७॥

सर्वेषाञ्च विधिः कार्य्यो मूषिकाणां विषेष्वयम् ॥
दग्ध्वा विस्रावयेद्दंशं प्रच्छितञ्च प्रलेपयेत् ॥२८॥

सव मूषिकाओंके विषोंमें यह विधि करनी चाहिये और दंशकी जगह दग्ध करके विस्रावण कर्म करे और लेप करना चाहिये ॥२८॥

शिरीषरजनीकुष्ठकुंकुमैरमृतायुतैः ॥
छर्द्दनं जालिनीक्वाथैः शुक्राख्यांकोटयोरपि ॥२९॥

शिरस, हलदी, कूट, केशर, गिलोय, कडुई तोरी के क्वाथ करके वमन कराना अथवा क्षुद्रमोथा, अंकोरके क्वाथ करके वमन कराना चाहिये ॥२९॥

शुक्राख्याकोशवत्योश्च मूलं मदन एव च ॥
देवदालीफलञ्चैव दध्ना पीत्वा विषं वमेत् ॥३०॥

और क्षुद्रमोथा, कडुई तोरी, मूली, मैनफल, देवदालीका फल इनको दहीके संग पीकर विषका वमन करना चाहिये ॥३०॥

फलं वचा देवदाली कुष्ठं गोमूत्रपेषितम् ॥
पूर्वकल्केन योज्याः स्युः सर्वोन्दुरु विषच्छिदः ॥३१॥

त्रिफला, वच, देवदाली अर्थात् वंदालकूटको गोमूत्रमें पीसकरपीछे पूर्वके कल्कसे तद्युक्त करे यह सब प्रकारके मूषाके विषोंको नष्ट करता है ॥३१॥

विरेचने त्रिवृद्दन्तीत्रिफलाकल्क इष्यते ।।
शिरोविरेचने सारः शिरीषफलमेव च ।।३२।।

और जुलावमें निशोत, जमालगोटाकी जड़ त्रिफलाका कल्क देना चाहिये और शिरके विरेचनमें नवसादर शिरसका फल ये देने चाहिये ।।३२।।

कटुत्रिकाद्यश्च हितो गोमयस्वरसोऽञ्जने ।।
कपित्थगोमयरसः सक्षौद्रो लेह इष्यते ।।३३।।

कटुत्रिक अर्थात् सूंठ, मिरच, पीपल इत्यादिक औषधें गौके गोबरके रसमें मिलाय अंजन डालना हित है और कैथ गोवरका स्वरस शहद को मिलाय चाटना चाहिये ।।३३।।

रसाञ्जनहरिद्रेन्द्रयवकट्वाषु वा कृतम् ।।
कल्कं सातिविषं प्रातर्लिह्याच्च क्षौद्रसंयुतम् ।।३४।।

और रसोत, हलदी, इन्द्रजव, कुटकी, अतीशका कल्क बनाय शहद मिलाय प्रातःकालमें चाटना चाहिये ।।३४।।

तण्डुलीयकमूलेषु सर्पिः सिद्धं पिबेन्नरः ।।
आस्फोटमूलसिद्धं वा पञ्चकापित्थमेव वा ।।३५।।

और चौलाईजड़ोंमें सिद्ध किया हुआ घृत पीवे अथवा सफेद गोकर्णीकी जड़में सिद्ध किया हुआ अथवा पंचकपित्थ नामक घृत पीना श्रेष्ठ है ।।३५।।

मूषिकाणां विषं प्रायः कुप्यत्यभ्रेषु निर्हृतम् ॥
तत्राप्येष विधिः कार्यो यश्च दूषीविषापहः ॥३६॥

विशेष करके मूषिकाओंका विष वर्षा समयमें कोपको प्राप्त होता है वहां दूषीविषनाशक इलाज करना चाहिये ॥३६॥

स्थिराणां रुजतां वापि व्रणानां कर्णिका भिषक् ॥
पाटयित्वा यथादोषं व्रणवच्चापि शोधयेत् ॥३७॥

जिनमें पीड़ा ठहर गई हो ऐसे स्थिर व्रणोंकी कर्णिकाको वैद्यजन फाड़कर फिर यथावत् व्रणकी तरह शोधन करे ॥३७॥

शृगालश्वतरक्ष्वृक्षव्याघ्रादीनां यदानिलः ॥
श्लेष्मप्रदुष्टो मुष्णाति संज्ञया भयमाश्रितः ॥३८॥

गीदड़ कुत्ता तिरखू अर्थात् सिंहविशेष रीछ, भेड़िया इत्यादिक जीवोंके जब वात और कफ कोप हो जाता है तब वे संज्ञासे रहित हुए भयके आश्रय होकर ॥३८॥

तदा प्रशस्तलांगूलहनुस्कन्धोऽतिलालवान् ॥
अत्यर्थं बधिरोंऽधश्च सोऽन्योन्यमभिधावति ॥३९॥

पूछको सीधी किये हुए और ठोडी तथा कंधेको सीधे किये हुए राल गिराते हुये अतिबधिर तथा अंधे होकर अन्य२ के प्रति भागते फिरते हैं ॥३९॥

तेनोन्मत्तेन दष्टस्य दंष्ट्रया सविषेण तु ॥
सुप्तता जायते दंशे कृष्णञ्चातिस्रवत्यसृक् ॥४०॥

सो उस उन्मत्त और डाढ़वाले और विषवाले जीवके डसनेसे दंशकी जगह पर शून्यता होजाती है और काला रुधिर अति निकलता है ।।४०।।

दिग्धविद्धस्य लिङ्गेन प्रायशश्चोलपक्षितः ।।
येन चापि भवेद्दष्टस्तस्य चेष्टारुतं नरः ।।४१।।

विशेष करके दिग्ध विद्धके चिह्न होते हैं और जिस जीव द्वारा डसा जावे उसीकी चेष्टा वह मनुष्य करता है ।।४१।।

बहुशः प्रतिकुर्वाणः क्रियाहीनो विनश्यति ।।
दंष्ट्रिणां येन दष्टश्च तद्रूपं यदि पश्यति ।।४२।।

बहुतसा भौंकता हुआ वह मनुष्य इलाज किये विना नष्ट हो जाता है और जिस जीव द्वारा डसा हो उसीका और शब्दका यदि लक्षण दीखे तो ।।४२।।

अप्सु वा यदि वादर्शेऽरिष्टं तस्य विनिर्दिशेत् ।।
अस्यत्यकस्माद्योऽभीक्ष्णं श्रुत्वा दृष्ट्वापि वा जलम् ।।४३।।

जलमें अथवा शीशेमें देखना चाहिये तब उसके अरिष्टको कहे सो यदि अचानक जलको सुनकर अथवा देखकर वारंवार फेंकने लग जावे तो ।।४३।।

जलत्रासं तु तं विद्यादरिष्टं चापि कीर्तयेत् ।।
अदष्टो वा जलत्रासी न कथञ्चन सिध्यति ।।४४।।

जलत्रास जानना और उसको अरिष्ट भी कहना और जो डसनेसे पहले भी जलसे उद्वेगको प्राप्त होवे वह कभी भी अच्छा नहीं होता।४४।।

प्रसुप्तोऽथोत्थितो वापि स्वस्थस्त्रस्तो न सिध्यति ॥
विस्राव्य दंशं तैर्दंष्टसर्पिषा परिदाहितम् ॥४५॥

और सोता हुआ अथवा उठकर अथवा स्वस्थ चित्तमें जो त्रासवान् हो वह अच्छा नहीं होताहै और वहां दंशकी जगह विस्रावणकर्म करके घृतका लेप करना चाहिये ॥४५॥

प्रदिह्यादगदैः सर्पिः पुराणं वापि पाययेत् ॥
अर्कक्षीरयुतञ्चास्य दद्याच्छीर्षविरेचनम् ॥४६॥

और औषधों द्वारा लेप करे अथवा पुराने घृतको पिलावे और आकके दूधसे युक्त औषधसे शिरका विरेचन करवावे ॥४६॥

श्वेतां पुनर्नवां चास्य दद्याद्धत्तूरकायुताम् ॥
पललं तिलतैलं च रूपिकायाः पयो गुडः ॥४७॥

और सफेद साठीको धतूराके संग देवे और मांस तिलोंका तेल रूपिका अर्थात् आकका दूध गुड़ ये सब दिये हुए ॥४७॥

निहंति विषमालर्कं मेघवृन्दमिवानिलः ॥
मूलस्य शरपुंखयाः कर्षं धत्तूरकार्द्धिकम् ॥४८॥

कुत्ताके विषको हर लेते हैं जैसे मेघके समूहको वायु वैसे शरपुंखा की जड़ धतूरा ऋद्धि को एक एक कर्षप्रमाण लेवे ॥४८॥

तण्डुलोदकमादाय पेषयेत्तण्डुलैः सह ॥
उन्मत्तकस्य पत्रैस्तु संवेष्टयापूपकं पचेत् ॥४९॥

और चावलोंका जल लेकर चावलोंहीके संग पीसे पश्चात् धतूराके पत्तोंको लपेट मालपुआको पका लेवे ॥४९॥

खादेदौषधकाले तु ह्यलर्कविषदूषितः ॥
करोत्यन्यान्विकारांस्तु तस्मिञ्जीर्य्यति चौषधे ॥५०॥

इसको श्वानके विषसे दूषित पुरुष औषधके समयपर खावे सो यह औषध जर जावे ॥५०॥

विकाराः शिशिरे याप्या गृहे वारिविवर्जिते ॥
ततः शान्तविकारस्तु स्नात्वा चैवापरेहनि ॥५१॥

तव अन्य विकारोंको करती है वे विकार जलसे रहित ठंडकवाले घरमें याप्य अर्थात् वड़े यत्नसे अच्छे हों ऐसे हो जाते हैं जव वे विकार शांत हो जावें तब दूसरे दिन स्नान करके ॥५१॥

शालिषष्टिकयोर्भक्तं क्षीरेणोष्णेन भोजयेत् ॥
दिनत्रये पंचमे वा विधिरेषोर्द्धमात्रया ॥५२॥

चावल और सांठी चावलोंके भातको गरम दूधके संग भोजन करे। फिर तीसरे दिन अथवा पांचवें दिन यह विधि आधी मात्रा करके करनी चाहिये ॥५२॥

कर्तव्यो भिषजा चात्र ह्यलर्कविषनाशनः ॥
कुप्येत्स्वयं विषं यस्य न स जीवति मानवः ॥५३॥

ऐसे वैद्यने कुत्ताके विष को नाशनेकी विधि करनी चाहिये और जिसके विष आप कोप हो जाता है वह मनुष्य नहीं जीता है ॥५३॥

तस्मात्प्रकोपयेदाशु स्वयं यावन्न कुप्यति ।।
बीजरत्नौषधीगर्भैः कुम्भैः शीताम्बुपूरितैः ।।५४।।

इसलिए जब तक विष अपनेआप कुपित नहीं होवे तबतक दूसरे की कोप करावे और उसको धातु रत्न औषधीसे युक्त और शीतल जलसे पूरित ऐसे कलशों द्वारा ।।५४।।

स्नापयेत्तं नदीतीरे समंत्रैर्वा चतुष्पथे ।।
बलिं निवेद्य तत्रापि पिण्याकपललं दधि ।।५५।।

स्नान करावे अथवा मंत्रोंद्वारा नदीके किनारे स्नान करवावे और चौराहामें खल मांस दही की बलि देवे ।।५५।।

माल्यानि च विचित्राणि मांसं पक्वामकं तथा ।।
अलकाधिपते यक्ष सारमेयगणाधिप ।।
अलर्कजुष्टमेतन्मे निर्विषं कुरु मा चिरात् ।।५६।।

और विचित्रपुष्प पका हुआ तथा कच्चे मांसकी बलि देवे हे अलकापुरीके स्वामिन् हे यक्ष हे कुत्तोंके गणके स्वामिन् कुत्ताके विषसे संयुक्त जो मुझको दुःख है इसको तुम शीघ्रही निर्विष करो ।।५६।।

दद्यात्संशोधनं तीक्ष्णमेवं स्नातस्य देहिनः ।।
अशुद्धस्य सुरूढेपि व्रणे कुप्यति तद्विषम् ।।५७।।

ऐसे उसको स्नान कराकर तीक्ष्ण जुलाब देवे और अशुद्ध हुआ जो बैठा रहता है उसके व्रणमें वह विष कोपको प्राप्त होता है ।।५७।।

श्वादयोभिहिता व्याला वातपित्तप्रकोपणाः ।।
अतः करोति दष्टस्तु तेषां चेष्टां रुतं नरः ।।५८।।

और श्वानआदिक जहरवाले जीव वातपित्तके प्रकोपवाले होते हैं इसलिए उनसे फाड़ा हुआ मनुष्य वैसीही चेष्टा करता है और शब्दको करता है ।।५८।।

बहुशः प्रतिकुर्वाणो न चिरान्म्रियते च सः ।।
नखदन्तक्षतं व्यालैर्यत्कृतं तद्विमर्दयेत् ।।५९।।

और बहुतसा भौंकता है, और मनुष्य शीघ्रही मर जाता है और नख दंत जहरवाले इनसे जो फाड़ा गया हो उसका विमर्द्दन करे ।।५९।।

सिञ्चेत्तैलेन वोष्णेन ते हि पित्तप्रकोपजाः ।।६०।।
इति विषतंत्रचिकित्साप्रकाशे षष्ठं तंत्रम् ।।६।।

और गरम गरम तेल द्वारा सेचन करे क्योंकि वेही पित्तको कोप करनेवाले हैं ।।६०।।

इति श्रीविषतंत्रचिकित्साप्रकाशे हिन्दीटीकायां षष्ठं तंत्रम् ।।६।।

सप्तमतंत्रम् ७

अथातो दुन्दुभिस्वनीयं व्याख्यास्यामः ।।

इसके अनंतर दुंदुभिस्वनीय तंत्रको कहते हैं ।।

धवाश्वकर्णतिनिशपलाशपिचुमर्दपाटलिपारिभद्रकाम्रोदुम्बरकरहाटकार्जुनककुभसर्ज्जकपीतनश्लेष्मातकांकोटामलकप्रग्रहकुटजशमीकपित्थाश्मकार्कचिरबिल्वमहावृक्षारुष्करारलुमधुकमधुशिग्रुशाकगोजीमूर्वातिल्वकेक्षुरकगोपघण्टारिमेदानां भस्मान्याहृत्य गवां मूत्रेण क्षारकल्पेन परिस्राव्य विपचेद्दद्याच्चात्र पिप्पलीमूलतण्डुलीयकवराङ्गचोचकमञ्जिष्ठाकरञ्जिकाहस्तिपिप्पलीमरीचोत्पलसारिवाविकगृहधूमानानन्तासोमसरलाबाह्लीकगुहाकोशास्त्रश्वेतसर्षपवारुणलवराप्लक्षनिचुलकवर्द्धवानवञ्जुलपुत्रश्रेणीसप्तपर्णदण्डकैलवालकनागदन्त्यतिविषाभयाभद्रदारुकुष्ठहरिद्रावचाचूर्णानि लोहानाञ्च समभागानि ततः क्षारवदागतपाकमवतार्य लोहकलशे निदध्यात् ।।१।।

धव एलका वृक्ष तिनवस ढाक कापूरकांचरी नींव पाटलवृक्ष देवदार आंव गूलर अकर्करा अर्जुनवृक्ष वड़ी रालका वृक्ष शिरस लसौड़ा अंकोट आंवला अमलतास कुडाकी छाल जांटी कैथ आपटा आक करंजुआ थोहर भिलावा आलुवृक्ष महुआ सहोंजना आल गोभी मूर्वा लोध ईख गोपघंटा दुर्गंधित खैरकी भस्मको ग्रहणकर फिर गौके मूत्रसे क्षारकल्पके अनुसार परिस्रावण कर पकावे और उसमें पीपलामूल

चौलाई दालचीनी साल अर्थात् चोबाचीनी मजीठ करंज बेल गजपीपल मिरच कमल अनंतमूल वायविडंग घरका धूंवा धमांसा लाल चंदन सरल देवदार हींग सालवण लालरान आंब सफेद सिरसम वायवरण चूका पिलखन जलवेत अरंड अशोक दवणा बड़ीखिजूर सातला थोहरकी लकड़ी एलवा नागकेशर अतीश हरडै देवदार कूट हलदी वच का चूर्ण और इस चूर्णके समान लोहाका चूर्ण मिलाय फिर खारकी तरह पाक हो जावे तव उतारकर लोहाके कलशेमें रख दे ॥१॥

अनेन दुंदुंभि लिम्पेत्पताकातोरणानि च ॥
श्रवणाद्दर्शनात्स्पर्शाद्विषात्संप्रति मुच्यते ॥२॥

पश्चात् इसका नक्कारों पर लेप करे और तोरण ध्वजा आदिकोंको लीप देवे उनके श्रवण दर्शन तथा स्पर्श करनेसे विष उतर जाता है॥२॥

एष क्षारागदो नाम शर्करास्वश्मरीषु च ॥
अर्शस्सु वातगुल्मेषु कासशूलोदरेषु च ॥३॥
अजीर्णे ग्रहणीदोषे भक्तद्वेषे च दारुणे ॥
शोफे सर्वसरे चापि देयः श्वासे च दारुणे ॥४॥

यह क्षारनामवाला औषध शर्करा अर्थात् बस्तिसंबंधी रोग पथरी ववासीर वातसे उपजे गुल्मरोग खांसी शूल उदररोग में तथा अजीर्ण ग्रहणीदोष दारुण भक्तद्वेष सूजन सव तरहके दस्त दारुणश्वास इन रोगोंमें देना चाहिये ॥३॥४॥

एषः सर्वविषार्तानां सर्वथैवोपयुज्यते ॥
तथा तक्षकमुख्यानामयं दर्पांकुशोऽगदः ॥५॥

और यह सब तरहके विषसे पीड़ित पुरुषोंको सदा देना चाहिये और तक्षक आदिक सर्पोंका यह दर्पांकुश औषध है ॥५॥

विडङ्गत्रिफलादन्ती भद्रदारुहरेणवः ॥
तालीशपत्रमञ्जिष्ठा केशरोत्पलपद्मकम् ॥६॥

और वायविडंग त्रिफला जमालगोटाकी जड़ देवदार हरेणु तालीशपत्र मजीठ केशर कमल पद्माक ॥६॥

दाडिमं मालतीपुष्पं रजन्यौ सारिवे स्थिरे ॥
प्रियंगुस्तगरं कुष्ठं बृहत्यौ चैलवालुकः ॥७॥

अनार मालतीके पुष्प दोनों हलदी दोनों सारिवा सालपर्णी पृश्निपर्णी मालकांगनी तगर कूट छोटी, कटेहली वड़ी कटेहली वालूक ॥७॥

रुचन्दनगवाक्षीभिररेतैः सिद्धं विषापहम् ॥
सर्पिः कल्याणकं ह्येतद्ग्रहापस्मारनाशनम् ॥८॥

चंदन गोडुंवा इनमें सिद्ध किया हुआ घृत विषको नष्ट करता है और यह कल्याणक नामवाला घृत ग्रह मृगीरोग को नष्ट करता है ॥८॥

पाण्ड्वामयगरश्वासमन्दाग्निज्वरकासनुत् ॥
शोषिणां स्वल्पशुक्राणां वन्ध्यानाञ्च प्रशस्यते ॥९॥

और पाण्डुरोग जहर श्वास मंदाग्नि ज्वर खांसी को दूर करता है और शोषरोगवाले स्वल्प वीर्यवाले वंध्या स्त्री को हित है ॥९॥

अपामार्गस्य बीजानि शिरीषस्य तथैव च ॥
श्वेतं द्वे काकमाची च गवां मूत्रेण पेषयेत् ॥१०॥

और जंगाके बीज शिरसके बीज सफेद अपराजिता विष्णुक्रांता मकोह को गोमूत्रमें पीसे ॥१०॥

सर्पिरेतैस्तु संसिद्धं विषसंशमनं परम् ॥
अमृतं नाम विख्यातमपि संजीवयेन्मृतम् ॥११॥

फिर इनमें सिद्ध किया हुआ घृत भलीभांति विषको शांत करता है यह अमृत नामवाला घृत है यह मरे हुएको भी जिला देता है ॥११॥

चन्दना गुरुणा कुष्ठं तगरं तिलपर्णिकम् ॥
प्रपौण्डरीकं नलदं सरलं देवदारु च ॥१२॥

और चंदन अगर कूट तगर तिलपर्णी पौंडा जटामांसी सरल देवदार ॥१२॥

भद्रश्रियं यवफलां भार्ङ्गीं नीलीं सुगंधिकाम् ॥
कालेयकं पद्मकं च मधुकं नागरं जटाम् ॥१३॥

चंदन इंद्रजव भारंगी नीली कस्तूरी दारुहलदी पद्माक महुआ सूंठ जटामांसी ॥१३॥

पुन्नागैलैलवालूनि गैरिकं ध्यामकं बलाम् ॥
तोयं सर्जरसं मांसीं सितपुष्पां हरेणुकाम् ॥१४॥

जायफल एलुवा गेरू रोहिषतृण खरैंहटी नेत्रवाला राल मांसी रोहिणी शंखपुष्पी हरेणुका ॥१४॥

तालीशपत्रं क्षुद्रैलां प्रियंगु सकुटन्नटाम् ॥
शैलपुष्पं सशैलेयं पत्रं कालानुसारिवाम् ॥१५॥

तालीशपत्र छोटी इलायची मालकांगनी टेंटूवृक्ष दगड़फूल शिलाजीत तेजपात काली पलसरी ॥१५॥

कटुत्रिकं शीतशिवं काश्मर्य्यं कटुरोहिणीम् ॥
सोमराजीमतिविषां पृथ्वीकामिन्द्रवारुणीम् ॥१६॥

सूंठ मिरच पीपल सेंधानमक खंभारी कुटकी बावची अतीश कलौंजी गडूंभा ॥१६॥

उशीरं वरुणं मुस्तं नखं कुस्तुम्बुरुं तथा ॥
श्वेता हरिद्रे स्थौणेयं लाक्षाञ्च लवणानि च ॥१७॥

खश वरणा नागरमोथा नख धनिया सफेद अपराजिता विष्णुक्रांता दोनों हलदी रोहिषतृण लाख सब प्रकारके लवण ॥१७॥

कुमुदोत्पलपद्मानि पुष्पञ्चापि तथार्कजम् ॥
चम्पकाशोकसुमनस्तिलकप्रसवानि च ॥१८॥

कुमुद कमल पद्माक आकके फूल चंपाके फूल अशोकवृक्षके फूल तिलके फूल ॥१८॥

पाटली शाल्मलीशेलुशिरीषाणां तथैव च ॥
सुरस्यास्तृणशूल्याश्च सिन्धुवारस्य यानि च ॥१९॥

और पाटलवृक्ष शालिपर्णी ल्हसोड़ा शिरस के फूल ॥१९॥

धवाश्च कर्णयोश्चापि पुष्पाणि तिनिशस्य च ॥
गुग्गुलुं कुंकुमं बिम्बीं सर्पाक्षीं गंधनाकुलीम् ॥२०॥

और धायके फूल लघुरालके फूल तिनसके फूल गूगल केशर बिंबीफल सर्पाक्षी रास्ना ॥२०॥

एतत्संभृत्य संभारं सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥
गोपित्तं मधुसर्पिर्भिर्युक्तं शृंगे निधापयेत् ॥२१॥

इन सब औषधोंको ग्रहण कर बारीक चूर्ण बनावे पीछे गौका पित्ता पित्ता शहद घृत इनमें मिला सींगमें डालकर रख देवे ॥२१॥

भग्नस्कन्धं विवृत्ताक्षं मृत्योर्दंष्ट्रांतरं गतम् ॥
अनेनागदमुख्येन मनुष्यं पुनराहरेत् ॥२॥

भग्नस्कंध आंख फटी हो अर्थात् विवृत्ताक्षरोग इन रोगोंसे युक्त मनुष्य मृत्युकी दाढ़में आया हुआ इस मुख्य औषध से छूट जाता है।और यह औषध अग्निके समान और दुर्वार तथा अतुल तेजवाले ॥२२॥

एषोऽग्निकल्पो दुर्वारं क्रुद्धस्यामिततेजसः ॥
विषं नागपतेर्हन्यात्प्रसभं वासुकेरपि ॥२३॥

तथा क्रोधवाले सर्पके विषको और वासुकी सर्पके भी विषको बल से हर लेता है ॥२३॥

महासुगंधिनामायं पञ्चाशीत्यंगयोजितः ॥
राजाऽगदानां सर्वेषां राज्ञो हस्ते भवेत्सदा ॥२४॥

और यह महासुगंधि नामवाला औषध पचासी अंगोंसे योजित किया हुआ है और औषधोंका राजा है और यह राजाके हाथसेही होता है ॥२४॥

तेनानुलिप्तस्तु नृपो भवेत्सर्वजनप्रियः ॥
भ्राजिष्णुताञ्च लभते सभामध्यगतोपि सन् ॥२५॥

इसको अंगमें लगानेसे राजा संपूर्ण मनुष्योंको प्रिय हो जाता है और सभाके बीचमें कांतिको प्राप्त हो जाता है ॥२५॥

उष्णवर्ज्यो विधिः कार्य्यो विषार्तानां विजानता ॥
मु कीटविषं तद्धि शीतेनाभिप्रवर्द्धते ॥२६॥

वैद्यको विषसे पीड़ित पुरुषोंकी विधि गरमसे रहित करनी चाहिये और कीटविष अर्थात् कीड़ोंके विषोंका शीतल इलाज नहीं करना क्योंकि शीतलतासे कीटविष बढ़ता है ॥२६॥

अन्नपानविधावुक्तमुपधार्य्य शुभाशुभम् ॥
शुभं देयं विषार्तेभ्यो विरुद्धेभ्यश्च वारयेत् ॥२७॥

और अन्नपानविधिमें कहाहुआ शुभ अशुभको विचारकर विषार्त पुरुषोंको शुभ देना चाहिये और अशुभको वर्ज देवे ॥२७॥

फाणितं शिग्रुसौवीरमजीर्णाध्यशनं तथा ॥
वर्ज्जयेच्च समासेन नवधान्यादिकं गुणम् ॥२८॥

और राय सहीजना बेर अजीर्णका भोजन इनको तथा नवीन धान्यके गणको वर्ज देवे ॥२८॥

दिवा स्वप्नं व्यवायञ्च व्यायामं क्रोधमातपम् ॥
सुरातिलकुलत्थांश्च वर्जयेद्धि विषातुरः ॥२९॥

और दिनमें सोना, स्त्रीसंग कसरत करना क्रोध धूपमें बैठना, मदिरा, तिल कुलथीको विषातुरपुरुष वर्ज देवे ॥२९॥

प्रसन्नदोषं प्रकृतिस्थधातुमन्नाभिकाक्षं सममूत्रजिह्वम् ॥
प्रसन्नवर्णेंद्रियचित्तचेष्टं वैद्योऽवगच्छेदविषं मनुष्यम् ॥३०॥

इति विषतंत्रचिकित्साप्रकाशे सप्तमं तंत्रम् ॥७॥

और वात आदिक दोष स्वच्छ हों धातु अपनी प्रकृतिमें स्थित हो अन्नमें इच्छा हो और मूत्र जिह्वा ये सम अर्थात् पहलेकी सदृश हो जावें और सुंदर वर्ण हो जावे और इन्द्रियोंकी तथा चित्तकी चेष्टा स्वच्छ हो ऐसे पुरुषको वैद्य विषसे दूर हुआ बतावे ॥३०॥

इति श्रीविषतंत्रचिकित्साप्रकाशे मिश्रशिवसहायसूनुरविदत्तशास्त्रि-
कृतहिन्दीटीकायां सप्तमतंत्रं समाप्तम् ॥७॥

हमारी सभी पुस्तकें मिलने के स्थान :—

१. खेमराज श्रीकृष्णदास, श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, सातवीं खेतवाड़ी, खम्बाटा लेन, बम्बई—४०० ००४.

२. गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास, लक्ष्मीवेंकटेश्वर स्टीम् प्रेस व बुकडिपो, अहिल्याबाई चौक, कल्याण, जि. ठाणे (महाराष्ट्र)

३, खेमराज श्रीकृष्णदास चौक, वाराणसी (उ. प्र.)

पुस्तके मिलने के स्थान :–

खेमराज श्रीकृष्णदास
श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७वीं खेतवाडी, खम्बाटा लेन,
बम्बई–४०० ००४

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो
अहिल्याबाई चौक, कल्याण
(जि० ठाणे–महाराष्ट्र)

खेमराज श्रीकृष्णदास, चौक–वाराणसी (उ० प्र०)

मुद्रक एवं प्रकाशक:
खेमराज श्रीकृष्णदास,
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, बम्बई-४०० ००४